समराइच्चकहा एक सांस्कृतिक अध्ययन

लेखक
डॉ॰ झिनकू यादव

भारती प्रकाशन
वाराणसी–१

प्रकाशक
भारती प्रकाशन
बी २७/९७, दुर्गाकुण्ड रोड,
वाराणसी—१

प्रकाशन वर्ष
सन १९७७
(भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त)

मुद्रक
वर्द्धमान मुद्रणालय
जवाहर नगर कालोनी, वाराणसी

परमपूज्यगुरुवर्याणां

भारतीयसंस्कृतिपुरातत्वविषयाधिगतविशेषवैदुष्याणां

प्रतिभावताम्, श्रीमतां लल्लनजी गोपाल महाभागानां

करकिसलयोः सादरर्पितम्

इदं पुस्तक प्रसूनम् ।

प्राक्कथन

इतिहास-संरचना की अपनी सीमायें और विशेषतायें हैं। इतिहासकार अतीत से प्राप्त सामग्री के माध्यम से घटनाओं एवं स्थितियों के स्वरूप का निर्धारण करता है। उसके प्रमाण ही उसकी सीमायें हैं। जिन घटनाओं और स्थितियों के विषय में संयोग से कोई ऐतिहासिक प्रमाण शेष नहीं बचा है उनके बारे में इतिहास प्रायः मौन ही रहता है। इतिहासकार का कार्यक्षेत्र उपलब्ध प्रमाणों की सीमा से घिरा है। वह अतीत को प्राप्त प्रमाणों की आँखों से ही देखता है। किन्तु प्रमाणों का मूल्यांकन करके इतिहास-संरचना करने में उसे तर्क एवं कुछ मात्रा में कल्पना का सहारा लेना पड़ता है। प्रमाण जिस रूप में उपलब्ध होते हैं इतिहासकार उन्हें उसी रूप में श्रद्धा एवं भक्ति के साथ स्वीकार नहीं कर सकता। प्रमाणों के प्रति श्रद्धाभाव इतिहासकार का अवगुण माना जाता है। जो प्रमाण अतीत के अवशेष या पदार्थ के रूप में उपलब्ध होते हैं वे स्वाभाविक ही मौन होते हैं। किन्तु इतिहासकार को इसके कारण विशेष असुविधा नहीं होती। ये प्रमाण मुखर तो नहीं हो पाते किन्तु इनका साक्ष्य अधिक वैज्ञानिक होता है। इनके विषय में यह आशंका नहीं रहती कि किसी ने विशेष उद्देश्य से प्रयास-पूर्वक एकपक्षीय उल्लेख किया है। ऐसी आशंका लिखित प्रमाणों के विषय में अधिक घटित होती है। लिखित सामग्री, वह अभिलेख के रूप में हो अथवा ग्रन्थ के रूप में, इस प्रकार के दोष से ग्रसित हो सकती है।

रचनाओं में उनके लेखकों के व्यक्तित्व और उनके उद्देश्यों की स्पष्ट छाप दिखलाई पड़ती है। लेखक का व्यक्तित्व अनेक तत्वों के प्रभाव से निर्मित होता है। जाने या अनजाने ये तत्त्व उसकी रचनाओं के स्वरूप को निर्धारित करते हैं। जीवन और समाज पर धर्म का गहरा प्रभाव देखते हुए हम कह सकते हैं कि लेखक का निजी धर्म उसके व्यक्तित्व के निर्माण में प्रमुख तत्त्वों में से रहा होगा। अनेक ग्रन्थों की रचना में लेखक के निजी धर्म के किसी विशेष तत्त्व की पुष्टि ही उद्देश्य के रूप में स्पष्ट उल्लिखित हुई है।

अतीत के किसी तथ्य के विषय में यदि विभिन्न दृष्टिकोणों से विवरण उपलब्ध हैं तो तुलनात्मक विवेचन के द्वारा उसके सही स्वरूप का निर्धारण किया जा सकता है। प्राचीन भारत के धार्मिक और सामाजिक जीवन का जो विवरण ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है वह प्रायः आदर्श पक्ष को ही प्रस्तुत

करता है। इन संस्थाओं के स्वरूप का मूल्यांकन करने के लिए यह आवश्यक है कि इनके आलोचकों के विचारों का भी अवलोकन किया जाय। कभी-कभी आदर्श व्यवस्था के साथ ही यथार्थ को समझने के लिए भी अन्य लेखकों द्वारा दिये गये विवरण उपयोगी होते हैं।

प्राचीन भारतीय साहित्य में से जैन ग्रन्थों को इतिहास-संरचना में उनका उचित स्थान नहीं मिल सका है। ऐसा क्यों हुआ इसकी विवेचना हम नहीं करना चाहेंगे। जैन प्रमाणों का अपना महत्त्व है। अनेक विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि जैन परम्परा में अनेक तथ्य अति प्राचीन हैं। ये अन्य ग्रन्थों से प्राप्त सामग्री के सही मूल्यांकन में तो सहायक हैं ही, कुछ विषयों के संबन्ध में तो हमें कदाचित् केवल इन्हीं का सहारा है।

जैन साहित्य मुख्यतः प्राकृत एवं अपभ्रंश में है। इन ग्रन्थों के प्रामाणिक प्रकाशन एवं ऐतिहासिक मूल्यांकन की दिशा में कुछ प्रयास तो हुए हैं, किन्तु प्रगति की गति संतोषजनक नहीं है। स्वाभाविक है कि प्रारंभ में शोध-कार्य ग्रन्थ अथवा लेखक विशेष के द्वारा प्रदत्त सामग्री के विश्लेषण के रूप में सम्पादित होगा। जब इस प्रकार की सामग्री प्रभूत मात्रा में उपलब्ध हो जायगी तो उसके समग्र विवेचन और मूल्यांकन की ओर प्रयास किया जा सकता है। डा० झिनकू यादव का प्रस्तुत प्रयास इस दृष्टि से सराहनीय है। उन्होंने इतिहासकारों द्वारा उपेक्षित-प्राय प्राकृत एवं अपभ्रंश ग्रन्थों की सामग्री को इतिहास-संरचना में उचित महत्त्व दिलाना ही शोध का अपना कार्यक्षेत्र स्वीकार किया है।

जैन प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य पूर्वमध्यकालीन इतिहास के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। इसमें राजस्थान, गुजरात और समीपवर्ती क्षेत्रों के इतिहास और सामाजिक तथा धार्मिक जीवन की वास्तविकता के विषय में बहुमूल्य सूचनाओं का भंडार निहित है। हरिभद्रसूरि की रचना समराइच्चकहा का इससे पूर्व उपयोग यदा-कदा ही हुआ था। पूरे ग्रन्थ की सामग्री का संकलन और सांगोपांग विवेचन डा० यादव ने अपने प्रस्तुत ग्रन्थ में उपस्थित किया है। उन्होंने अन्य समकालीन प्रमाणों से तुलनात्मक विवेचन कर उपलब्ध तथ्यों का ऐतिहासिक मूल्यांकन किया है। इसी प्रकार किसी भी तथ्य का पूर्व इतिहास प्रस्तुत करके उन्होंने उसको उचित इतिहास-क्रम में आंका है।

हरिभद्रसूरि आठवीं शताब्दी ईसवी में हुए थे। आठवीं शताब्दी कई अर्थों में संक्रान्ति काल था। प्राचीन काल की व्यवस्थायें दीर्घकालीन विकास के बाद परिवर्तन की ओर बढ़ रही थीं, किन्तु मध्यकाल की अवस्थायें अपने सही रूप में प्रगट नहीं हुई थीं। इस संधि अवस्था में प्राचीन और मध्यकालीन व्यवस्थायें

परस्पर मिली-जुली दिखलाई पड़ती हैं। समराइच्चकहा में सामंत-प्रथा के जो विवरण मिलते हैं वे समकालीन स्थिति को परिलक्षित करते हैं। समराइच्च-कहा में राजप्रासाद, मंत्री, सैन्य-व्यवस्था, दण्ड-व्यवस्था और पंचकुल आदि के विषय में महत्वपूर्ण सामग्री मिलती है। पारंपरिक वर्ण-व्यवस्था के साथ ही हरिभद्रसूरि ने जाति-संबंधी समकालीन वास्तविकता का भी अंकन किया है। विवाह की विधि का विवरण धर्मशास्त्रों मे प्राप्त संक्षिप्त निर्देश का पूरक है और तत्कालीन सामाजिक जीवन के एक महत्वपूर्ण पक्ष का सच्चा चित्र प्रस्तुत करता है। व्यापार और उद्योगों के विषय में भी प्रचुर उपयोगी उल्लेख हैं। सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न पक्षों पर भी इस ग्रंथ से समुचित प्रकाश पड़ता है। हरिभद्रसूरि ने जैन धर्म और दर्शन के विषय में प्रामाणिक सामग्री के साथ ही समकालीन धार्मिक कृत्यों और विश्वासों की ओर भी निर्देश किया है।

मुझे आशा है कि पूर्वमध्यकालीन समाज और जीवन की वास्तविकताओं को समझने में प्रस्तुत शोध-प्रबंध सहायक होगा। इसका प्रकाशन जैन साहित्य के अध्ययन के मार्ग पर अग्रसर होने में डॉ० यादव के उत्साह का वर्धक हो, ऐसी मेरी शुभकामना है।

लल्लनजी गोपाल

प्रमुख, कलासंकाय एवं

प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं

पुरातत्व विभाग

६-३-७७ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

दो शब्द

समराइच्च कहा श्वेताम्बर जैनाचार्य श्रीहरिभद्र सूरि की एक महत्वपूर्ण प्राकृत रचना है। हरिभद्र सूरि का काल आठवीं-नौवीं शताब्दी मे माना जाता है। कथा का प्रमुख उद्देश्य धर्मकथा सुना कर लोगों को जैन धर्म में दीक्षित कर मोक्ष की तरफ अग्रसर करना था। समराइच्च कहा में आदर्श और यथार्थ का संघर्ष दिखा कर अंत में आदर्श की प्रतिष्ठा करायी गयी है। इस ग्रन्थ में जनसाधारण से लेकर राजा-महाराजाओं तक के चरित्र को विस्तार एवं सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया गया है। पूर्व मध्यकालीन प्राकृत कथाओं में समाज एवं व्यक्ति की विकृतियों पर प्रहार करके उनमें सुधार लाने का प्रयास किया गया है। इन प्राकृत कथाकारों ने लोक प्रचलित कथाओं के द्वारा लोक प्रचलित जनभाषा में अपने संदेश लोगों तक पहुँचाने के प्रयास किये हैं। इसी प्रकार समराइच्च कहा में भी समाज के विभिन्न वर्गों के वास्तविक जीवन का चित्र प्रस्तुत किया गया है। यह ग्रन्थ अपने समय की भौगोलिक, आर्थिक, प्रशासनिक, सामाजिक, धार्मिक आदि विभिन्न स्थितियों के अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण श्रोत है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल भारतीय इतिहास में संक्रांति का काल माना जाता है। वैदिककाल से चली आ रही प्राचीन परंपराएँ जर्जरित हो गयी थी तथा नयी चेतनाएँ पुष्पित हो रही थी। इस प्रकार की स्थितियों का विवरण कथाकार ने अपनी कथाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है; यह पूर्व मध्यकालीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति का एक सबल प्रमाण स्रोत है।

समराइच्च कहा को अपने शोध विषय का आधार प्रदान करने की सलाह मुझे प्रोफेसर लल्लनजी गोपाल से मिली। मैंने उनसे काफी विचार-विमर्श करने के पश्चात् इस ग्रन्थ का सम्पूर्ण अध्ययन करके उसकी प्रचुर सामग्रियों पर एक सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत करने का निश्चय किया। तत्पश्चात् उन्हीं के निर्देशन में मैंने जनवरी १९७० में पी० एच० डी० के लिए इसी विषय पर शोध कार्य प्रारम्भ किया।

प्रोफेसर लल्लनजी गोपाल जो मेरे गुरु हैं, उनकी पत्नी डॉ० श्रीमती कृष्ण कांति गोपाल तथा डॉ० रघुनाथ सिंह जी (भूतपूर्व संसद सदस्य) के सानिध्य में मैंने अपने जीवन का प्रमुख उद्देश्य अध्ययन एवं अध्यापन ही निश्चित किया। प्रोफेसर लल्लनजी गोपाल के मधुर व्यवहार एवं विद्वत्तापूर्ण निर्देशन का ही परिणाम था कि मैं अपना शोधकार्य तमाम कठिनाइयों के होते हुए भी पूरा कर

सका। उनके अपूर्व स्नेह तथा विद्वत्तापूर्ण सुझावों के लिए मैं उनके प्रति आजीवन आभारी रहूँगा। डॉ० श्रीमती कृष्ण कांति गोपाल तथा डॉ० रघुनाथ सिंह जी से मुझे समय-समय पर महत्त्वपूर्ण सुझाव तथा कार्य करने की प्रेरणा मिली मैं उनके प्रति हृदय से आभार प्रकट करता हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ को पूरा करने में मुझे 'प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व' विभाग के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री सुरेशचन्द घिण्डियापाल से पुस्तकों की पूरी-पूरी सहायता प्राप्त हुई जिसके लिए मैं उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ। इसी प्रकार पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान के अध्यक्ष डॉ० मोहनलाल मेहता, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के गायकवाड ग्रन्थालयाध्यक्ष के प्रति भी आभार प्रकट करता हूँ जहाँ से मुझे पुस्तकीय सहायता मिली।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् के अध्यक्ष प्रोफेसर राम शरण शर्माजी का मैं हृदय से अभारी हूँ जिन्होंने समुचित सुझाव देकर इसके प्रकाशनार्थ अनुदान स्वीकृत किया। मैं इस पुस्तक के प्रकाशन में भारती प्रकाशन, वाराणसी के श्री प्रकाश पाण्डेय के तथा वर्द्धमान मुद्रणालय का भी आभारी हूँ जिनकी सहायता से ही यह पुस्तक इस रूप में प्रकाशित हो सकी।

प्रूफ पढ़ने में कुछ अशुद्धियाँ अनजाने में रह गयीं जिसके लिए मैं पाठकों से क्षमा प्रार्थी हूँ। प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के अध्ययन की दिशा में मेरा यह अल्प प्रयास सफल हो, यही मेरी ईश्वर से प्रार्थना है।

वाराणसी

मार्च २२, १९७७। झिनकू यादव

संकेताक्षर सूची

आदि०—आदि पुराण

इपि० इंडि०—इपिग्रैफिया इंडिका

इंडि० ऐंटी०—इंडियन ऐंटीक्वेरी

इंडि० इपि०—इंडियन इपिग्रैफिकल ग्लासरीज

इंडि० हिस्टा० क्वार्ट०—इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली

कामं०—कामंदकनीतिसार

गौतम०—गौतम स्मृति

गौतम०—गौतम धर्मसूत्र

नीतिवाक्या०—नीतिवाक्यामृत

पराशर०—पराशर स्मृति

पृ०-पृष्ठ

बृह०—बृहस्पति स्मृति

मनु०—मनुस्मृति

याज्ञ०—याज्ञवल्क्य स्मृति

वशिष्ठ—वशिष्ठ स्मृति

सम० क०—समराइच्च कहा

सं०—संपादक

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

अध्याय : ४

अध्याय : ५

अध्याय : ६

अध्याय : ७

अध्याय : ८

●

प्रथम–अध्याय

हरिभद्र सूरि का काल निर्धारण

समराइच्च कहा को शोध प्रबन्ध का आधार बनाने से पूर्व उसके रचयिता का समय निर्धारण कर लेना आवश्यक है। समराइच्चकहा और धूर्ताख्यान आदि प्राकृत कथाओं के रचयिता हरिभद्र सूरि थे जो एक जैन श्वेताम्बराचार्य के नाम से प्रख्यात थे। इनका समय निर्धारण अधोलिखित ढंग से किया जा सकता है।

कुवलयमाला कहा के रचयिता उद्योतन सूरि ने हरिभद्र सूरि को अपना गुरु माना है[1] तथा उन्होंने कुवलयमाला कहा को शक संवत् ७०० (७७८ ई०) में समाप्त किया था।[2] जिससे स्पष्ट होता है कि हरिभद्र की तिथि ७७८ ई० के पूर्व ही रही होगी।[3] मुनि जिन विजय ने हरिभद्र के समय निर्णय नामक निबन्ध में हरिभद्र द्वारा उल्लिखित आचार्यों की नामावली उनके तिथि क्रम के अनुसार इस प्रकार दी है—धर्म कीर्ति (६००-६५० ई०), वाक्यपदीय के रचयिता भर्तृहरि (६००-६५०), कुमारिल (६२०-७०० ई०), शुभगुप्त (६४०-७०० ई०) और शांत रक्षित (७०५-७३२ ई०)।[4] हरिभद्र सूरि द्वारा उल्लिखित इस नामावली से स्पष्ट होता है कि हरिभद्र का समय ई० सन् ७०० के बाद ही रहा होगा। अतः उद्योतन सूरि के कुवलयमालाकहा के आधार पर हरिभद्र सूरि का अभ्युदय काल ७०० ई० से ७७८ ई० तक माना जा सकता है।

प्रो० आभ्यंगर ने हरिभद्र के ऊपर शंकराचार्य का प्रभाव बतलाकर उन्हें शंकराचार्य के बाद का विद्वान माना है।[5] किन्तु मुनि जिन विजय ने हरिभद्र को शंकराचार्य का पूर्ववर्ती माना है। उनके अनुसार शंकराचार्य का समय ७७८ ई०

---

१. कुवलयमाला, अनुच्छेद ६, पृ० ४—"जो इच्छई भवविरहं को ण बंदए सुयणो। समय सय सत्थ गुरुणो समरमियंका कहा जस्स ॥"

२. वही अनुच्छेद ४३०, पृ० २८२—"सो सिद्धतेण गुरुजुत्ती सत्थेहि जस्स हरिभद्दो। बहु सत्थ गंथ-वित्थर पत्थारिय पयड सव्वत्थो ॥"

३. इसका समर्थन डा० दशरथ शर्मा तथा यम० सी० मोदी ने भी किया है। देखिए—दशरथ शर्मा—अर्ली चौहान डाइनेस्टीज पृ० २२२; तथा यम० सी० मोदी—सम० क० इन्ट्रोडक्शन।

४. मुनि जिन विजय—हरिभद्राचार्यस्य समय निर्णयः।

५. विंशतिविंशिका—प्रस्तावना।

मे ८२० ई० तक स्वीकार किया जाता है और तर्क मे बताया है कि हरिभद्र ने अपने पूर्ववर्ती सभी विद्वानों का उल्लेख किया है किन्तु शंकराचार्य का[1] नहीं जिससे हरिभद्र का काल शंकराचार्य के पूर्व निश्चित होना अभीष्ट है।

उपमितिभवप्रपंचा कथा के रचयिता सिद्धर्षि ने अपनी कथा की प्रशस्ति में हरिभद्र को अपना गुरु मान कर उनकी वंदना की है।[2] प्रो० आभ्यंगर ने हरिभद्र को सिद्धर्षि का साक्षात् गुरु मान कर उनका समय विक्रम संवत् ८००-९५० माना है; परन्तु जिन विजय के अनुसार आचार्य हरिभद्र द्वारा रचित ललितविस्तरावृत्ति के अध्ययन मे सिद्धर्षि का कुवासनामय विष दूर हुआ था। इसी कारण सिद्धर्षि ने उसके रचयिता को धर्मबोधक गुरु माना है।[3]

ऊपर के विवरण को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि जो हरिभद्र कुवलयमाला कहा के रचयिता उद्योतन सूरि के गुरु रह चुके थे (जिन्होंने ७७८ ई० में कुवलयमाला कहा की रचना की थी) वह सिद्धर्षि (जिनका समय दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ का माना जाता है) के गुरु कदापि नहीं हो सकते और न तो उन पर शंकराचार्य का प्रभाव ही सिद्ध किया जा सकता है।

हरिभद्र के षड्दर्शनसमुच्चय श्लोक ३० मे जयन्त भट्ट की न्यायमंजरी के कुछ[4] पद्य जैसे के तैसे प्राप्त होते हैं। पंडित महेन्द्र कुमार ने जयन्त की न्याय मंजरी का रचना काल ई० सन् ८०० के लगभग मानकर हरिभद्र का समय ८०० ई० के बाद का स्वीकार किया है[5]। किन्तु यह तिथि मान लेने पर हम उन्हें उद्योतन सूरि का गुरु नहीं मान सकते। नेमिचन्द्र शास्त्री के अनुसार संभवतः हरिभद्र और जयन्त इन दोनों ने किसी एक ही पूर्ववर्ती रचना से उक्त पद्य को उद्धृत किया है।[6]

सटीकनयचक्र के रचयिता मल्लवादी का निर्देश हरिभद्र ने अनेकान्तजय-

---

१ मुनि जिन विजय—हरिभद्राचार्यस्य समय निर्णयः।

२ वही पृ० ६।

३ नेमि चन्द्र शास्त्री—हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन पृ० ४८।

४ न्यायमंजरी, विजय नगर संस्करण, पृ० १२९—गम्भीर गर्जितारंभ—निभिन्न गिरिगह्वरा। रोलम्बगवल व्यालतमालमलिनत्विषः॥ त्वंगता-डिल्लतासंगपिशंगोत्तु विग्रह। वृषि व्यभिचरंतहि नैव प्रायः प्रयोमुचः॥"

५. सिद्धिविनिश्चय टीका की प्रस्तावना, पृ० ५२॥

६. नेमिचन्द्र शास्त्री—हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ० ४६॥

पताका की टीका मे किया है। नेमिचन्द्र शास्त्री के अनुसार हरिभद्र सूरि मल्लवादी के समसामयिक विद्वान थे जिनका काल ८२७ ई० के आस पास माना गया है[१]। अतः कुवलयमाला कहा के रचयिता उद्योतन सूरि के शिष्यत्व को ध्यान मे रखते हुए हरिभद्र का समय ७३० ई० से ८३० ई० तक माना है।[२]

इन उपरोक्त तर्कों को ध्यान मे रखते हुए यह कहा जा सकता है कि हरिभद्र सूरि ७०० ई० के बाद से लेकर ८२७ ई० के कुछ बाद तक जीवित रहे। चूंकि ऊपर हरिभद्र द्वारा उल्लिखित अपने पूर्व आचार्यो की सूची में शांत रक्षित का काल ७०५ ई० मे ७३२ ई० तक बढ़ाया गया है। अतः स्पष्ट है कि यदि शांत रक्षित की तिथि सही हैं तो हरिभद्र ७०५ ई० के बाद ही हुए होंगे। मुनि जिन विजय ने इनका जो काल निर्धारण ७०० से ७७० ई० तक किया है वह ७०५ ई० के बाद का ही तर्क संगत प्रतीत होता है और हरिभद्र सूरि को मल्लवादी की समकालीनता को ध्यान में रखते हुए उनकी तिथि ७३० ई० के बाद मे लेकर ८३० ई० के लगभग मानी जा सकती है।

हरिभद्र सूरि का जीवन वृत्तांत

हरिभद्रसूरि की ही रचनाओं मे उनके जीवन वृत्तान्त सम्बन्धी कुछ विवरण प्राप्त होते हैं। आवश्यकसूत्र टीका प्रशस्ति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हरिभद्र श्वेताम्बर सम्प्रदाय के विद्याधरगच्छ के शिष्य थे। गच्छपति आचार्य का नाम जिन भट्ट और दीक्षा गुरु का नाम जिनदत्त था। इनकी धर्ममाता याकिनी महत्तरा थी।[3] मुनिचन्द्र द्वारा रचित उपदेशपद टीका प्रशस्ति (११७४ ई०), जिनदत्त का 'गणधरमार्धशतक' (११६८ से ११२१ ई०), प्रभाचन्द्र का 'प्रभावकचरित' (वि० सम्वत् १३३४), राजशेखर द्वारा रचित 'प्रबन्धकोष' एवं सुमतिगणि द्वारा रचित 'गणधरमार्धशतक वृहद् टीका' (वि० स० १२८५) आदि के आधार पर हरिभद्र सूरि का जीवन वृत्तान्त स्पष्ट होता है। ये राजस्थान के चित्रकूट (चित्तौड़) नामक स्थान में जन्म लिये थे। इनका जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था और अपनी विद्वता के कारण ही वहां के राजा जीतार्य के राज पुरोहित नियुक्त हुए थे। बाद में इन्होंने दीक्षा ग्रहण कर

---

१. नेमिचन्द्र शास्त्री—हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ० ४६।

२. वही, पृ० ४७।।

३. नेमिचन्द्र शास्त्री—हरिभद्र सूरि के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ० ४८।।

जैन श्रमण के रूप में अपना जीवन राजपूताना और गुजरात में व्यतीत किया। समराइच्च कहा की कथा में उल्लिखित जनपदों एवं नगरों आदि के वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि हरिभद्रसूरि ने समस्त उत्तर भारत का भी भ्रमण किया था। किन्तु उनकी रचनाओं में दक्षिण भारत का विशेष वर्णन नहीं मिलता है जिससे प्रतीत होता है कि हरिभद्र ने मुख्यतया उत्तरी भारत, राजपूताना और गुजरात में ही श्रमण के रूप में भ्रमण किया होगा।

हरिभद्र सूरि के जीवन की महत्वपूर्ण घटना उनका धर्म परिवर्तन है। उनकी यह प्रतिज्ञा थी कि 'जिसका वचन में स्वयं न समझूं उनका शिष्य हो जाऊं।' संयोगवश हरिभद्र सूरि एक बार एक बिगड़े हुए हाथी से बचने के लिए याकिनी महत्तरा नाम की साध्वी के आश्रम में पहुँचे। वहां उन्होंने उस साध्वी द्वारा 'हरिपणगं चक्कीण केसवो चक्की। केसव चक्की केसवदुचक्की केसव चक्की य[1]' कहे गये गाथा का अर्थ न समझने पर साध्वी से उसका अर्थ पूछा। साध्वी ने उन्हें गच्छ पति आचार्य जिनभट्ट के पास भेजा और आचार्य से अर्थ सुनकर वे उन्हीं के द्वारा दीक्षित हो गये। कालान्तर में वह उन्हीं के पट्टधर आचार्य बन गये।

हरिभद्र सूरि ने अपने को याकिनी सूनु कहा है क्योंकि याकिनी महत्तरा के ही प्रभाव से इन्होंने अपना धर्म परिवर्तित कर जैन धर्म में दीक्षा ग्रहण की थी। सत्य रूप से उन्होंने याकिनी को अपनी धर्म माता स्वीकार किया। हरिभद्र सूरि भवविरह सूरि अथवा विरहांक कवि के रूप में भी जाने जाते थे जिसका उल्लेख उद्योतन सूरि के कुवलयमाला कहा तथा हरिभद्र की स्वयं की रचनाओं में आया है। हरिभद्र ने अपने ग्रन्थों की अन्तिम गाथा तथा श्लोक में कभी भव विरह और कभी विरहांक कवि आदि का प्रयोग किया है।

हरिभद्र सूरि जिनभट्ट आचार्य के पास जब गये तो उनसे धर्म का फल पूछा। आचार्य ने धर्म के दो भेद बतलाये—सस्पृह (सकाम) और निःस्पृह (निष्काम)। सकामधर्म का आचरण करने वाला स्वर्गादि सुख का भागी बनता है तथा निष्काम धर्म का आचरण करने वाला भव विरह मोक्ष (जन्म, जरा मरणादि से छुटकारा पाना) पद का अनुगामी होता है। हरिभद्र ने भव विरह को ही श्रेय समझ कर ग्रहण किया[2]। अतः किसी के द्वारा नमस्कार या वन्दना किये जाने पर वे उसे 'भव विरह करने में उद्यमवन्त होओ' कहकर आशीर्वाद

---

१. जैकोबी द्वारा लिखित समराइच्चकहा की प्रस्तावना, पृ० ८ ॥

२. नेमिचन्द्र शास्त्री—हरिभद्र सूरि के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ० ५० ॥

देते थे। भक्त लोग 'भव विरह सूरि' चिरंजीवी हों', कहते हुए प्रस्थान कर देते थे। इस प्रकार 'भव विरह' रूप में लोक प्रिय होने के कारण हरिभद्र ने स्वयं भव विरह शब्द को ग्रहण किया और उसी नाम से कवि अथवा आचार्य कहे जाने लगे।[1]

रचनाएं

आचार्य हरिभद्र सूरि द्वारा लिखे गये ग्रन्थों की सूची के विषय में विद्वानों में मतभेद है। अभयदेव सूरि ने पंचासग की टीका में, मुनि चन्द्र ने उपदेश पद की टीका मे और वादिदेव सूरि ने अपने स्याद्वाद रत्नाकार में हरिभद्र को १४०० प्रकरणों का रचयिता बताया है, राजशेखर सूरि ने अपनी अर्थ दीपिका मे तथा विजय लक्ष्मी सूरि ने अपने उपदेश प्रासाद में इनको १४४४ प्रकरणों का प्रणयनकर्ता माना है।[2] राजशेखर सूरि ने अपने प्रबन्ध कोश में इनकी रचनाओं की संख्या १४४० बतायी है[3]। लेकिन अब तक के उपलब्ध ग्रन्थों की सूची देखते हुए लगभग १०० ग्रन्थों के नामों का पता लगा है जो हरिभद्र सूरि द्वारा रचित कहे जा सकते हैं। डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने हरिभद्र सूरि की रचनाओं की एक तालिका दी है[4], जिनमे आगम ग्रन्थों और पूर्वाचार्यों की कृतियों पर टीकाओं की संख्या १६ है, स्वरचित ग्रन्थों मे टीका सहित मौलिक ग्रन्थ ७ है एवं टीका रहित मौलिक ग्रन्थ जिनमे समराइच्च कहा, धूर्ताख्यान, षड्दर्शन समुच्चय आदि ग्रन्थ भी सम्मिलित है, की संख्या २७ है तथा कुछ संदिग्ध रचनायें भी हैं जिनकी संख्या ४३ हैं।

समराइच्चकहा की संक्षिप्त कथावस्तु

समराइच्चकहा की कथा नौ भव में कही गई है। इन नौ भवों में समरादित्य के नौ जन्मों की कथा आई है। प्रथम भव में गुणसेन और अग्नि शर्मा की कथा कही गई है। अग्नि शर्मा अपने बाल्यावस्था के संस्कार और हीनत्व की भावना के कारण ही गुणसेन द्वारा पारण के दिन भूल जाने के कारण उसके ऊपर क्रुद्ध हो जाता है और जन्म-जन्मान्तर तक बदला लेने की भावना लेकर मृत्यु को प्राप्त होता है। परिणामतः वह अनन्त संसार की ओर अग्रसर होता

---

१. नेमिचन्द्र शास्त्री—हरिभद्र सूरि के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ० ४५ ॥
२. वही, पृ० ५१ ॥
३. वही, पृ० ५१ ॥
४. वही, पृ० ५२–५४ ॥

है। इधर गुणसेन पश्चाताप की अग्नि में जलते हुए अपने सात्विक गुणों के कारण धर्म की ओर उन्मुख होता है। अन्त में दोनों मर कर दूसरे जन्म में पिता और पुत्र रूप मे उत्पन्न होते हैं। गुणसेन सिंह कुमार के रूप में तथा अग्नि शर्मा आनन्द के रूप में जन्म लेते है जिनकी कथा दूसरे भव में कही गई है। आनन्द अपने पिता सिंह कुमार द्वारा दिये गये राज्य से संतुष्ट न होकर पूर्वजन्म के संकल्प के अनुसार पिता को बन्दी बना लेता है और अन्त में मार डालता है। तृतीय भव में अग्नि शर्मा की आत्मा जालिनी और गुणसेन की आत्मा शिखिन के रूप में चित्रित किये गये हैं। इस भव में भी माता जालिनी अपने पुत्र शिखिन को अपने पूर्व जन्म के प्रण का लक्ष्य बनाती है और विषमिश्रित लड्डू खिला कर मार डालती है। चतुर्थ भव में वही गुणसेन और अग्नि शर्मा क्रमशः धन और धनश्री (पति-पत्नी) रूप में दिखाये गये हैं और अंत में धन भी धनश्री के पूर्वजन्म के कोप का भाजन बनता है। पंचम भव में जय और विजय की कथा कही गई है। इस भव में विजय कुमार पूर्व जन्म के कुत्सित संस्कार के ही फलस्वरूप जय को षडयंत्र से मार डालता है। छठे भव मे धरण और लक्ष्मी की कथा कही गई है जो परस्पर पति और पत्नी के रूप में चित्रित किये गये हैं। इस भव मे भी लक्ष्मी (पत्नी) को बदले की भावना प्रज्ज्वलित होती है और धरण को मार डालने का षडयंत्र करती है। सप्तम भव में सेन और विशेण की कथा कही गयी है और अंत में सेन श्रमण धर्म का आचरण करते हुए भ्रमण करते हैं तथा विशेण उसे पूर्व भव के विकार से उत्पन्न दोष के कारण मारने का प्रयास करता है; किन्तु क्षेत्र देवता के प्रभाव से असफल रहता है। आठवें भव में गुण चन्द्र और बानमंतर की कथा आती है। गुण चन्द्र अपने पूर्व जन्मों के सत्कर्मों के प्रभाव से शुद्ध आत्मा तथा बानमंतर दुष्कर्मो द्वारा उत्पन्न विकार के फलस्वरू दुष्चरित्र बनता है। इस भव में भी बानमंतर गुणचन्द्र को मारने का निरंतर प्रयास करता है लेकिन वह गुणचन्द्र के अन्दर उत्पन्न दैवी प्रभाव के कारण असफल रह जाता है। अंत में नवें भव मे समरादित्य और गिरिषेण की कथा कही गयी है। समरादित्य अपने पूर्व जन्मों के सतकर्मों के प्रभाव से संसार से निवृत्त हो जाता है और मोक्ष प्राप्त करता है, जबकि गिरिषेण अपने दुष्टाचारण के परिणाम स्वरूप संसार गति को प्राप्त होता है।

समराइच्चकहा अपने समय की संस्कृति एवं सामाजिक रीति रिवाजों का एक प्रमुख स्रोत है। इस ग्रन्थ में प्राचीन भारत के अन्त तथा पूर्व मध्यकाल के प्रारम्भ के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक संगठनों का नया रूप देखने को मिलता है। अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही भारतीय

परम्पराओं का ह्रास तथा नयी चेतना का विकास इस ग्रन्थ की विशेषता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन भारतीय सामाजिक परम्पराओं का क्रमिक ह्रास तथा नये सामाजिक संगठनों का प्रारम्भ किस प्रकार हुआ इसका प्रमाण और विवेचन हमें समराइच्चकहा में देखने को मिलता है।

इस ग्रन्थ के रचयिता श्वेताम्बर जैनाचार्य हरिभद्र सूरि हैं। वैदिक धर्म का आचरण करने वाले तपस्वी एवं मुनिजनों के आचार एवं विचार का यत्र तत्र वर्णन करते हुए जैन विचारों की विशेषता बता कर जैन धर्म में लोगों की प्रवृत्ति पैदा करना इस ग्रन्थ का लक्ष्य है। समराइच्चकहा एक जैन ग्रन्थ होने के साथ-साथ आठवीं शताब्दी के भारत की सम्प्रदायों एवं प्रचलित विचार धाराओं की सूचना का एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की सूचनायें जैन धर्म से प्रभावित जान पड़ती है जिसकी पुष्टि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अध्यायों में यथोचित की गयी है।

समराइच्चकहा तत्कालीन समाज की आर्थिक अवस्था का एक प्रधान स्रोत है। देश के अन्दर तथा देश के बाहर के द्वीपों के साथ जलमार्गों द्वारा व्यापार का जितना सुविस्तृत उल्लेख समराइच्च कहा में मिलता है उतना अन्यत्र विरल है। उस समय के व्यापारियों के सामने स्थल एवं जल मार्गों में उत्पन्न कठिनाइयों का विस्तृत वर्णन समराइच्चकहा में देखने को मिलता है। इस ग्रन्थ की एक अन्य विशेषता यह है कि इसके अधिकतर पात्र व्यापार एवं वाणिज्य करते हुए दिखलाये गये हैं और इन्हीं नायकों को अन्त में जैन धर्म में प्रवृत्त हुआ दिखलाया गया है। सम्भवतः जैन धर्मावलम्बियों के सिद्धान्त में कृषि कर्म को प्राथमिकता न देकर व्यापार-वाणिज्य को अधिक प्रश्रय दिया गया है जो अहिंसावादी जैन धर्म के प्रभाव के कारण प्रतिपादित जान पड़ता है।

समराइच्च कहा के प्रत्येक भव की कथा शिल्प, वर्ण्य विषय, चरित्र, स्थापत्य, संस्कृति निरूपण एवं सन्देश आदि विभिन्न दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। यहाँ आदर्श और यथार्थ का संघर्ष दिखा कर अन्त में आदर्श की प्रतिष्ठा की गयी जान पड़ती है। कुछ अन्य विचारकों ने भी यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्राकृत कथा साहित्य बहुत ही उपयोगी है। जनसाधारण से लेकर राजा-महाराजाओं तक के चरित्र को जितने विस्तार एवं सूक्ष्मता के साथ प्राकृत कथाकारों ने चित्रित किया है उतना अन्यत्र दुर्लभ हैं।[1] प्रायः सभी प्राकृत कथाओं में यह

१. नेमिचन्द्र शास्त्री—हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ० ३९९।

स्पष्ट रूप में देखने को मिलता है कि वे पाठकों के समक्ष जगत का यथार्थ उपस्थित कर आत्म कल्याण की ओर प्रवृत्त करने वाला सिद्धान्त उपस्थित करते हैं।[१] समराइच्च कहा के हर भव में प्रायः ये सारी विशेषताएँ पायी जाती हैं।

यह प्राकृत कथाएँ आगम काल से ही प्रारम्भ होकर पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी तक विकसित होती रही। इन प्राकृत कथाओं में समाज और व्यक्ति की विकृतियों पर प्रहार कर उनमें सुधार लाने का प्रयास किया गया है। प्राकृत कथा साहित्य की प्रमुख विशेषता यह है कि कथाकारों ने लोक प्रचलित कथाओं को लोक प्रचलित जन भाषा में व्यक्त किया और उन्हें अपने धार्मिक ढाँचे में ढाल कर धर्म प्रचारार्थ एक नया रूप दिया। विटरनित्स ने भी प्राकृत कथा साहित्य की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए—लिखा है कि जैनों का कथा साहित्य वास्तव में विशाल है। साहित्य की अन्य शाखाओं की अपेक्षा हमें जन-साधारण के जीवन की झाँकियाँ स्पष्ट रूप से देखने को मिलती हैं। जिस प्रकार इन कथाओं की भाषा और जनता की भाषा में अनेक साम्य हैं उसी प्रकार उनका वर्ण्य विषय भी विभिन्न वर्गों के वास्तविक जीवन का चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करता है।[२] उन्हीं के विचार से जैन आचार्यों ने जन सामान्य के हित को ध्यान में रखते हुए प्राचीन जैन आगम ग्रन्थ तथा उनपर प्रारम्भिक टीकाएँ प्राकृत भाषा (मागधी और महाराष्ट्री) में लिखी जो सर्वसाधारण की भाषा थी।[३] समराइच्च कहा आठवीं-नौवीं शताब्दी की जनप्रचलित भाषा में अंकित एक बृहद् कथा साहित्य है जिसमें राजा-महाराजाओं से लेकर समाज के निम्नस्तर तक के व्यक्तियों का सही स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। इसमें तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित रीति-रिवाजों, रहन-सहन के ढंग, सामाजिक संगठन, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक स्थिति का स्पष्ट चित्रांकन किया गया है। प्राकृत कथा साहित्य में इसका अपना विशिष्ट स्थान है जो प्राकृत कथाओं की संपूर्ण विशेषताओं का भंडार स्वरूप जान पड़ता है।

●

१. नेमिचन्द्र शास्त्री—हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ० ३९९।
२. विटरनित्स—हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ४७५।
३. वही पृ० ४२७।

द्वितीय–अध्याय

भौगोलिक उल्लेख

समराइच्च कहा में भारत की भौगोलिक सीमा के अन्तर्गत पूर्व में कामरूप-आसाम, पश्चिम में हस्तिनापुर, दक्षिण में सौराष्ट्र, और उत्तर में हिमालय तक के प्रदेशों का उल्लेख है। इस सीमा के बाहर कुछ द्वीपों यथा—चीन द्वीप, सिंहल द्वीप, रत्न द्वीप, महाकटाह आदि का उल्लेख है। विभिन्न द्वीपों और नगरों के साथ-साथ अनेक वन, पर्वत और नदियों का भी उल्लेख है जिनके आधार पर हरिभद्र द्वारा उल्लिखित भारत की भौगोलिक दशा का वर्णन किया जा सकता है।

द्वीप

समराइच्च कहा में निम्नलिखित द्वीपों का उल्लेख मिलता है।

जम्बू द्वीप[1]—समराइच्च कहा में जम्बू द्वीप की स्थिति आदि के बारे मे विस्तृत उल्लेख नहीं है। किन्तु जैन परम्परा में इस द्वीप का विशेष महत्व बताया गया है। जम्बू वृक्ष के नाम के कारण ही इस द्वीप का नामकरण हुआ। इसका आकार गोल है और इसके मध्य में नाभि के समान मेरु पर्वत स्थित है। जम्बू द्वीप का विस्तार १००००० योजन है और परिधि ३,१६२२७ योजन ३० कोस १२८ धनुष १२॥ अंगुल बताई गयी है।[2] इसका घनाकार क्षेत्र ७९० करोड़ ५६९,४१५० योजन है।[3]

जम्बू द्वीप (एशिया) हिमवन (हिमालय), महाहिमवन, निषध, नील, रुक्मि और शिखरी—इन छः पर्वतों के कारण भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावन नाम के सात क्षेत्रों में विभाजित है।[4] भरत क्षेत्र २५६ ६/१९ योजन विस्तार वाला है जो क्षुद्र हिमवन्त के दक्षिण में तथा पूर्वी और पश्चिमी

---

१. सम० क० १, पृ० ७५, २, पृ० १३०; ३, पृ० १६२; ४, पृ० ३६३; ६, पृ० ५७६; ७, पृ० ६१२-७१३; ८, पृ० ७३१।

२. हरिवंश पुराण, ज्ञानपीठ संस्करण, ५।४-५।

३. वही, ५।६-७।

४. जगदीश चन्द्र जैन—जैनागम साहित्य में भारतीय समाज, परिशिष्ट १, पृ० ४५६।

समुद्र के बीच स्थित है। इस क्षेत्र के बीचोबीच वैताढ्य पर्वत स्थित है। गंगा-सिंधु आदि नदियों तथा इस वैताढ्य पर्वत के कारण यह क्षेत्र छः भागों में विभाजित है।[१] विदेह क्षेत्र पूर्व विदेह, अपर विदेह, देवकुरु और उत्तर कुरु नामक चार भागों में विभक्त हैं। इसी प्रकार पूर्व विदेह और अपर विदेह अनेक विजयों में विभक्त हैं।[२]

जम्बू द्वीप के बीचोबीच सुमेरु पर्वत है[3] जिसकी उँचाई एक लाख योजन बतायी गयी है। यह द्वीप चारो तरफ लवण समुद्र (हिन्द महासागर) से घिरा है।[४]

चीन द्वीप[५]—समराइच्चकहा में चीन द्वीप की भौगोलिक स्थिति का उल्लेख नहीं है। अपितु भारतीय व्यापारियों द्वारा व्यापार के निमित्त उक्त द्वीप की यात्रा का वर्णन है। निशीथ चूर्णी में भी चीन द्वीप का उल्लेख है।[६] चीनी रेशम के लिए यह द्वीप प्रसिद्ध था। यह वर्तमान पूर्व एशिया का मध्यवर्ती सुप्रसिद्ध एवं विस्तृत देश है। पार्जिटर के अनुसार चीन द्वीप के अन्तर्गत तिब्बत तथा हिमालय की पूरी शृंखलाएँ सम्मिलित थीं।[७] इस विस्तृत देश के पूर्व में चीन सागर एवं पीला सागर, दक्षिण पूर्व में उप द्वीप, पश्चिम में तिब्बत, तथा उत्तर में प्रसिद्ध चीन की प्राचीर (दीवाल) है।

महाकटाह द्वीप—हरिभद्र कालीन भारतीय व्यापारियों के जलयान महाकटाह द्वीप को भी आया-जाया करते थे।[८] प्राचीन कटाह को ही आधुनिक केडाह नाम से जाना जाता है जो मलाया प्रायद्वीप के पश्चिमी तट पर स्थित है।[९]

भारत के प्रसिद्ध बंदरगाह वैजयन्ती से भारतीय जहाज महाकटाह की तरफ

१. जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति १।१० ।
२. जगदीश चन्द्र जैन—जैनागम साहित्य में भारतीय समाज, परिशिष्ट १, पृ० ४५६ ।
३. बी० सी० ला—इंडिया डिस्क्राइब्ड, पृ० २ ।
४. जगदीश चन्द्र जैन—जैनागम साहित्य में भारतीय समाज, परिशिष्ट १, पृ० ४५६ ।
५. सम० क० ६, पृ० ५४०-४१-५४३-५५२-५५५ ।
६. निशीथचूर्णी, २, पृ० ३९९ ।
७. मार्कण्डेय पुराण, पार्जिटर द्वारा अनूदित—पृ० ३१९ ।
८. सम० क० ४, पृ० २५०; ५, पृ० ४२६; ७, पृ० ७१३ ।
९. आर० सी० मजूमदार—"सुवर्णद्वीप" पृ० ५१ ।

प्रस्थान करते थे। कटाह द्वीप का स्थानीय नाम कडाह द्वीप था।[1] कथासरित्सागर में कटाह को सम्पन्न एवं उन्नतिशील द्वीप बताया गया है।[2] प्रसिद्ध कहानी 'देवस्मित' में गुहासेन द्वारा ताम्रलिप्ति बंदरगाद से कटाह द्वीप तक की यात्रा का उल्लेख प्राप्त होता है।[3] यह कटाह द्वीप ही महाकटाह द्वीप के नाम से प्रसिद्ध था।

रत्न द्वीप—समराइच्च कहा में व्यापारियों के जलयान द्रव्य संग्रह के निमित्त अन्य द्वीपों के साथ-साथ रत्न द्वीप को भी जाते थे।[4] संभवतः यह भाग भारत और चीन के बीच एक टापू था, जहाँ रत्नों की प्राप्ति का संकेत प्राप्त होता है। तत्कालीन चीन द्वीप को प्रस्थान करने वाले भारतीय व्यापारियों के जलयान रत्न द्वीप में भी रुकते थे जो रत्न गिरि नामक पर्वत के पास स्थित था।[5]

सिंहल द्वीप—समराइच्च कहा में व्यापारिक जलयान ताम्रलिप्ति से सिंहल द्वीप आते-जाते दिखाई देते हैं।[6] गरुड़ पुराण तथा वायु पुराण में भी इस द्वीप का नाम आया है।[7] यह द्वीप भारत के दक्षिण में स्थित है और रामेश्वर तथा सेतुबन्धु नामक पर्वत तथा जलगर्भस्थ शैलमाला द्वारा भारत के साथ मिला हुआ है। इस तरह के शैल और द्वीप श्रेणी के रहने पर भी उसके अन्दर से नाव तथा जहाज ले जाने का मार्ग है।

सुवर्ण द्वीप—समराइच्च कहा में सुवर्ण द्वीप का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[8] इसे स्वर्ण प्राप्ति का स्रोत समझ कर लोग सुवर्ण भूमि भी कहा करते थे। यह द्वीप आधुनिक सुमात्रा के नाम से जाना जाता है। मलय-उप-द्वीप और चीन सागर को हिन्द महासागर से पृथक् रखकर सुमात्रा पेनंग की एक समानान्तर रेखा से आरम्भ होकर वण्टम की समान्तराल रेखा तक विस्तृत है। इसकी लंबाई ९२५ मील और चौड़ाई ९० मील के करीब है। कथासरित्सागर में भी

१. के० ए० नीलकांत शास्त्री—दी चोलाज, पृ० २१८।
२. आर० सी० मजूमदार—सुवर्ण द्वीप, पृ० ५१।
३. वही पृ० ५१।
४. सम० क० २, पृ० १२६—दव्व संगह निमित्तं गया रयणदीवं। विटताइं रयसगइं, कथा संजुत्ती पयट्टानिपदेशमागन्तुं।"
५. वही ६, पृ० ५४५।
६. सम० क० ४, पृ० २५४; ५, पृ० ३९९-४०३-४०७-४२०।
७. आर० सी० मजूमदार—सुवर्ण, द्वीप पृ० ५१।
८. सम० क० ५, पृ० ३९७-३९८; ६, पृ० ५४०-५४४।

भारतीय व्यापारियों के जलयान व्यापार के निमित्त सुवर्ण द्वीप को आते-जाते दिखाए गए हैं।[१] इस द्वीप का प्रसिद्ध नगर कालमापुर था जो व्यापारिक सामग्रियों के क्रय-विक्रय का केन्द्र था।[२] इसके साथ-साथ सुवर्ण द्वीप का उल्लेख ग्रीक, लैटिन, अरबी और चीनी लेखों एवं साहित्य में भी मिलता है।

जनपद

द्वीपों की भांति समराइच्च कहा में कुछ अधोलिखित जनपदों के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं जिससे हमें हरिभद्रसूरि कालीन भारत की स्थिति एवं समृद्धि आदि की जानकारी प्राप्त होती है।

अवन्ति—समराइच्च कहा मे इसे एक जनपद के रूप में बताया गया है;[3] किन्तु इसकी स्थिति आदि पर प्रकाश नहीं डाला गया है। यह प्राचीन भारत के सोलह महाजनपदों मे से एक था।[४] पौराणिक परम्परा के अनुसार इस जनपद को मध्य देश के अन्तर्गत बताया गया है।[५] रैप्सन के अनुसार उज्जैन अथवा उज्जयिनी जो कि अवन्ति की राजधानी थी तथा शिप्रा नदी के तट पर स्थिति थी, आधुनिक मध्य भारत अथवा ग्वालियर मे स्थिति उज्जैन है।[६] बौद्ध साहित्य में उज्जयिनी से माहिष्मती तक के प्रदेश को अवन्ति जनपद के अन्तर्गत माना गया है[७]। दीघनिकाय के अनुसार माहिष्मती कुछ समय तक अवन्ति की राजधानी थी[८]। इस जनपद मे अत्यधिक अन्न पैदा होता था तथा वहां के लोग धनी, समृद्ध एवं खुशहाल थे।[९] जैन ग्रन्थ निशीथचूर्णी में भी अवन्ति को एक जनपद के रूप मे उल्लिखित किया गया है जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी।[१०]

प्राचीन अवन्ति दो भागों मे बटा था, उत्तरी भाग जिसकी राजधानी उज्जैन

---

१. आर० सी० मजुमदार—सुवर्ण द्वीप पृ० ३७, ६८।
२. कथा सरित्सागर, तरंग, ५४, पंक्ति ९७!
३. सम० क० १, पृ० ९५१, 'अन्नयाय समागओ अवन्ति जणवयं।'
४. वी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ एंसियन्ट इंडिया, पृ० ३५८, ३६२॥
५. मत्स्य पुराण, प्रथम खण्ड, पृ० ३४९, श्लोक ३६॥
६. रैप्सन—ऐंसिन्ट इंडिया, पृ० १७५॥
७. नेमिचन्द्र शास्त्री—आदि पुराण मे प्रतिपादित भारत, पृ० ४६॥
८. दीघनिकाय, २,२३५॥
९. अंगुत्तर निकाय ४,२५२–२५६–२६२॥
१०. निशीथ चूर्णी १, पृ० १३, १०२॥

थी तथा दक्षिणी भाग (दक्षिणपथ अवन्ति) जिसकी राजधानी माहिष्मती थी।[1] यह जनपद वर्तमान मालवा का वह भाग है जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी।

उत्तरापथ—समराइच्च कहा में इसे जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में स्थित एक विषय (जनपद) के रूप में बताया गया है[2]। उत्तरापथ का उल्लेख निशीथचूर्णी में भी आया है[3]। यह पृथूदक का उत्तरी भाग था जिसका (पृथूदक का) वर्तमान नाम पिहोवा है तथा जो सरस्वती नदी के तट पर स्थित है। यह वर्तमान मथुरा जिले का भूभाग रहा है[4]। इस जनपद की जलवायु या तो अधिक गर्म रहती थी या तो अधिक ठंड तथा वहां वर्षा खूब होती थी।[5]

करहाटक—समराइच्च कहा में इसका उल्लेख एक जनपद के रूप में हुआ है।[6] महाभारत से ज्ञात होता है कि पाण्डव कुमार सहदेव ने करहाट को जीता था।[7] आदि पुराण में भी इस जनपद का उल्लेख है[8] जिसके दक्षिण में वेत्रवती तथा उत्तर में कोहना की स्थिति बतायी गयी है। नेमिचन्द्र शास्त्री ने इसकी पहचान सतारा जिले के करहाड से की है।[9]

कलिंग—समराइच्च कहा में इसे भी एक विषय (जनपद) के रूप में उल्लिखित किया गया है।[10] अष्टाध्यायी में भी कलिंग जनपद का उल्लेख है[11]। महावंश में कलिंग और वंग देश के राजाओं के बीच वैवाहिक संबंधों का वर्णन है।[12] कलिंगराज खारवेल के हाथी गुम्फा अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने

---

1. ज्योग्राफिकल इन्साइक्लोपीडिया आफ एंसियन्ट एण्ड मेडिवल इंडिया, पृ० ८०–८१।
2. सम० क० ३, पृ० ३११—'अत्थि इहेव जम्बुद्दीवे भारहेवासे उत्तरावहे विसये—राया'।
3. निशीथचूर्णी १, पृ० २०, ५२, ६७, ८९, १५४; २, पृ० ८२, ९५; ३, पृ० ३९; ४, पृ० २७।
4. मधुसेन—एकल्चरलस्टडी आफनिशीथ चूर्णी, पृ० ४०६।
5. वही, पृ० ४०६।
6. सम० क० ४, पृ० ३०८—इओ स................करहाडय विसये धन्नऊरय संन्निवेसंमि....।
7. महाभारत—सभा पर्व, अध्याय ३१।
8. आदि पुराण, १६।१५४।
9. नेमिचन्द्र शास्त्री—आदि पुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० ५१।
10. सम० क० ४, पृ० ३१८—'सा कलिंग विसये....समुप्पन्नों, तथा पृ० ३२६।
11. अष्टध्यायी, ४।१।१७०।
12. बी० सी० ला—ज्योग्राफी आफ अर्ली बुद्धिज्म, पृ० ४९४–९५।

अंग एवं मगध से जिन प्रतिमा को लाकर यहां स्थापित की थी। कलिंग की राजधानी कंचनपुर (भुवनेश्वर) थी[1]। कनिंघम के अनुसार कलिंग जनपद की प्रथम राजधानी चिकाकोल थी जो कलिंग पाटम से २० मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित थी। यह जनपद ५००० ली अथवा ८३३ मील विस्तृत था।[2] कलिंग जनपद में तोसलि नामक एक महत्वपूर्ण स्थान था जहां तीर्थंकर महावीर ने विहार किया था। यहां पर तोसलिक नामक एक क्षत्रिय राजा था जो जैन धर्म का प्रेमी था; वहां एक सुन्दर जिन प्रतिमा भी विद्यमान थी।[3]

कामरूप—समराइच्च कहा में इसे मात्र एक जनपद के रूप में उल्लिखित किया गया है;[4] किन्तु इसकी स्थिति आदि पर प्रकाश नहीं पड़ता। कनिंघम के विचार में कामरूप असम का प्राचीन नाम है जो मध्य भारत में पुण्ड्रवर्धन (पुब्ना) से ९०० ली अथवा १५० मील पूर्व में स्थित था।[5] संभवतः यह जनपद १०,००० ली अथवा १६०० मील विस्तृत भूभाग वाला था।[6] इसके उत्तर में भूटान, पूर्व में नौ गांग तथा दारंग जिला, दक्षिण में खासी की पहाड़ियां और पश्चिम में गोल्पर स्थित था[7]। इसकी राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर थी।[8] कामरूप का वृहद् भाग एक लंबे मैदान के रूप में है, जिसके निचले भाग से ब्रह्मपुत्र नदी (पूरब से पश्चिम की तरफ) बहती है। इस नदी के दक्षिण वाला भाग पहाड़ियों के द्वारा अधिक टूटा हुआ है।[9] इसकी पहचान आधुनिक गौहाटी से की गयी है।[10] हर्षवर्धन के समय में वहां का राजा भास्कर वर्मा था।

काशी[11]—समराइच्च कहा में काशी का उल्लेख एक जनपद के रूप में हुआ

---

१. ओघ निर्युक्ति भाष्य ३०।९७।
२. कनिंघम—एंसियन्ट ज्योग्राफी आफ इंडिया, पृ० ५५०।
३. नेमिचन्द्र शास्त्री—आदि पुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० ५१।
४. सम० क० ९, पृ० ९०४—अत्थि कामरुव विसये मयणउरंनामनयरं।
५. ज्यूलियन—ह्वेनसांग, ३, पृ० १७६।
६. कनिंघम—एंसियन्ट ज्योग्राफी आफ इंडिया, पृ० ५७२–७३।
७. बी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ ऐंसियन्ट इंडिया, पृ० २६८।
८. कालिका पुराण, अध्याय ३८।
९. बी० सी० एलेन—कामरूप, आसाम डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, खण्ड ४, अध्याय १।
१०. जर्नल आफ दी रायल एशियाटिक सोसायटी, १९००, पृ० २५।
११. सम० क० ८, पृ० ८४५—तओ य पउत्त पुरिसेहिंतो कासियाविसय रंठिय..........राया।

है। भारत के पवित्र स्थानों में काशी अथवा वाराणसी सबसे प्रसिद्ध था। प्राचीन भारत के षोडस जनपदों में काशी एक जनपद के रूप में उल्लिखित है।[१] पाणिनि की अष्टाध्यायी, पतंजलि के भाष्य तथा भागवत् पुराण में भी काशी का उल्लेख है।[२] वाराणसी को काशी नगरी अथवा काशीपुरी भी कहा गया है।[३] जातक में इस नगर को १२ योजन विस्तार वाला बताया गया है।[४]

काशी जनपद के उत्तर में कोशल जनपद, पूरब में मगध और पश्चिम में वत्स जनपद की सीमाएं थी।[५] काशी जनपद में ही वाराणसी के पास सारनाथ में भगवान बुद्ध ने प्रथम धर्मचक्रप्रवर्तन किया था।[६] आदि पुराण से इस जनपद का स्वतंत्र अस्तित्व सिद्ध होता है।[७]

कोसल—समराइच्च कहा में इसे एक जनपद के रूप में उल्लिखित किया गया है।[८] यह जैन सूत्रों का एक प्राचीन जनपद था।[९] रामायण तथा महाभारत में भी इस जनपद का उल्लेख है।[१०] बृहत्कल्प भाष्य से पता चलता है कि इसी जनपद में अचल गणधर का जन्म हुआ था तथा जीवन्त स्वामी की प्रतिमा भी यहीं विद्यमान थी।[११] कोसल का प्राचीन नाम विनीता था। कहा जाता है कि यहां के निवासियों ने विभिन्न प्रकार की कुशलता प्राप्त की थी, इसी कारण विनीता को कुशला नाम से जाना जाने लगा।[१२] यह एक स्वतंत्र जनपद के रूप में दो

१. सौर पुराण, अध्याय ४, पंक्ति ५; कालिका पुराण ५१, ५३; ५८, ३५।
२. अंगुत्तर निकाय १, २१३; ४, २५२, २५६, २६०।
३. अष्टाध्यायी ४, २, ११६; महाभाष्य २, १, १, पृ० ३२; भागवत् पुराण ९, २२–२३; १०, ५७, ३२; १०, ६६, १०; १०, ८४, ५५; १२, १३, १७।
४. स्कन्द पुराण अध्याय १, १९, २३; योगिनितंत्र १, २; २; ४।
५. जातक ४, ३७७; ६, १६०।
६. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, १, ३१६।
७. दीघ निकाय ३, १४१; मज्झिम निकाय, १, १७०; संयुत्त निकाय ५, ४२०।
८. आदि पुराण १६, १५१; २९, ४७।
९. सम०क० ४, पृ० २८८—कोसलाहिवस्स, तथा ४, पृ० ३३९, कोसलाये-विसयम्मि:, ८, पृ० ८२१, ८३१।
१०. जगदीशचन्द्र जैन—जैनागम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० ४६८।
११. रामायण, २।६८।१३; महाभारत ११।३०।२३; ३१।१२।१३।
१२. बृहत्कल्प भाष्य ५, ५८२४।
१३. आवश्यक टीका—मलय गिरि, पृ० २१४।

भागों में विभक्त था—उत्तर कोसल जिसकी राजधानी श्रावस्ती थी तथा दक्षिण कोसल जिसकी राजधानी साकेत नगरी थी।[1] यह बौद्धकालीन षोडस महाजनपदों में से एक था।[2] यह वर्तमान फैजाबाद जिले का भूभाग है।

कोंकण[3]—समराइच्च कहा में कोंकण राज का उल्लेख मात्र है। कोंकण में जैन श्रमणों ने विहार किया था। इस देश में अत्यधिक वृष्टि के कारण जैन श्रमणों को छतरी रखने का विधान था।[4] यहाँ मच्छर बहुत होते थे।[5] कोंकण देश के निवासी फल-फूल के बड़े शौकीन होते थे।[6] कोंकण पश्चिमी घाट तथा अरब सागर के बीच का भू-भाग था।[7] ह्वेनसांग के अनुसार कोंकण द्राविड (कांजीवरम्) से २००० ली अथवा ३३० मील उत्तर-पश्चिम में स्थित था।[8] यह जनपद ५००० ली अथवा ८३३ मील भू-भाग में विस्तृत था।[9] रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में इसे अपरांत देश कहा गया है।[10] कल्याण तथा बम्बई आदि नगर इसी जनपद के अन्तर्गत थे। शक्तिसंगम तंत्र में कोंकण से पश्चिम सौराष्ट्र और पश्चिमोत्तर आभीर जनपद की स्थिति मानी गयी है।[11] आदि पुराण के अनुसार यह जनपद पश्चिमी समुद्र के तट पर तथा पश्चिमी घाट के पश्चिमी तीर पर अवस्थित था।[12] निशीथचूर्णी में भी इस जनपद का उल्लेख आया है।[13] बम्बई के पास ठाणा जिले के सोपारा नामक स्थान से इसकी पहचान की जा सकती है।

१. जे० सी० सिकदार—स्टडीज इन दी भगवती सूत्र, पृ० ५३५।
२. अंगुत्तर निकाय १।२१३; विष्णु पुराण, अध्याय ४।
३. सम० क०, ६, पृ० ५०१ (सा य.........कोङ्कणरायपुत्तस्स सिसुवालस्स।
४. आचारांग चूर्णी, पृ० ३६६।
५. सूत्र कृताङ्ग टीका, ३।१।१२।
६. बृहत्कल्प भाष्य वृत्ति, १।१२३९।
७. डॉ० सी० सरकार—स्टडीज इन दी ज्योग्राफी आफ एंसियंट एण्ड मेडिवल इण्डिया, पृ० ११०।
८. ज्यूलियन—ह्वेनसांग, ३, पृ० १४७।
९. कनिंघम—एंसियण्ट ज्योग्राफी आफ इण्डिया, पृ० ६३२-३३।
१०. रघुवंश, ४, ५८ (अपरान्त महीपाल व्याजेन रघवेकरम्)।
११. शक्ति संगम तंत्र ३, ७, १३ (कोंकणात्पश्चिमं तीर्त्वा समुद्रप्रान्त गोचरः हिंगुलाजान्तकोदेवि शतयोजनमाश्रितः)।
१२. नेमिचन्द्र शास्त्री—आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० ५६।
१३. निशीथचूर्णी—१, पृ० ५२, १००, १०१, १५४; ३, पृ० २९६।

गान्धार जनपद—समराइच्च कहा में इसकी स्थिति जम्बू द्वीप के विजय क्षेत्र में बताई गयी है।[1] निशीथचूर्णी में भी इसका उल्लेख एक जनपद के रूप में किया गया है।[2] शतपथ ब्राह्मण[3] तथा छान्दोग्य उपनिषद्[4] में गान्धार का बराबर उल्लेख आता है। मज्झिम निकाय की अट्ठकथा में गांधार को सीमान्त जनपद कहा गया है।[5] अंगुत्तर निकाय में इसे षोडस जनपदों में से एक बताया गया है।[6] पाणिनि की अष्टाध्यायी में भी इसका उल्लेख है।[7] ह्वेनसांग के अनुसार यह जनपद पूरब से पश्चिम में १००० ली से अधिक तथा उत्तर से दक्षिण में ८०० ली से भी अधिक विस्तार वाला था। यह जनपद अत्यधिक उपजाऊ था। यहाँ अत्यधिक गन्ना पैदा होता था तथा यहाँ की जलवायु गर्म थी।[8] कनिंघम के अनुसार गांधार जनपद की सीमा के पश्चिम में लंधान तथा जलालाबाद, उत्तर में श्वेत तथा तूनीर की पहाड़ियाँ, पूरब में सिन्धु, तथा दक्षिण में कालाबाग की पहाड़ियाँ स्थित थीं।[9] इस जनपद के अंतर्गत रावलपिण्डी तथा पेशावर स्थित था।[10]

पुण्ड्र—समराइच्च कहा में इसे भी एक जनपद के रूप में उल्लिखित किया गया है।[11] इसकी राजधानी विन्ध्यगिरि के पास स्थित सतद्वार थी।[12] महाभारत में भी पुण्ड्र राजाओं का नाम आया है।[13] पुण्ड्रवर्धन का उल्लेख गुप्त

---

१. सम० क० १, पृ० ८५—रिट्ठो मये गान्धार जणवयाहिवस्स समरसेणस्स-नत्तुओ; १, पृ० ८८—अत्थि इहेव विजये गन्धारो नाम जणवओ; १, पृ० ५६।

२. निशीथचूर्णी, ३, पृ० १८८।

३. शतपथ ब्राह्मण, ११, ४, ११।

४. छान्दोग्य उपनिषद्, ६, १४—गीता प्रेस।

५. मज्झिम निकाय, २, पृ० ९८२।

६. अंगुत्तर निकाय १, पृ० २१३; ४, पृ० २५२, २५६, २६०।

७. अष्टाध्यायी ४, १, १६८।

८. वाटर्स—आन युवानच्वांग १, १९८–९९।

९. कनिंघम—ऐंशियन्ट ज्योग्राफी आफ इण्डिया, पृ० ४८; मैकक्रिण्डिल—ऐंसियन्ट इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड वाई टालेमी, पृ० ८१।

१०. रैप्सन—ऐंसियन्ट इण्डिया, पृ० ८१।

११. सम० क० ४, पृ० २७५—अत्थि इहेव भरहंमि पुण्डो नाम जणवओ।

१२. जे० सी० सिकदार—स्टडीज इन भगवती सूत्र, पृ० ५३७।

१३. महाभारत, सभा पर्व ७८, ९३।

काल में बुध गुप्त के दामोदर अभिलेख (४८२ ई०)[१] तथा दामोदर ताम्रपत्र अभिलेख (५४३ ई०)[२] में हुआ है। पुण्ड्र जनपद के अन्तर्गत ही पुण्ड्र वर्धन नामक नगर था जो जैन धर्म का प्रमुख केन्द्र रहा है।

वत्स—समराइच्च कहा में वत्स देश के राजा का ही उल्लेख है।[3] महाभारत से पता चलता है कि भीमसेन ने पूर्व दिग्विजय के समय इस जनपद को जीता था।[४] काशिराज प्रतर्दन के पुत्र का पालन गोशाला में वत्सों (बछड़ों) से हुआ था, इसी कारण इस जनपद को वत्स कहा जाने लगा।[५] काशी, कोशल, अवन्ति आदि जनपदों की भाँति वत्स को भी बौद्ध कालीन षोडस महाजनपदों में गिनाया गया है। इसकी स्थिति अवन्ति के उत्तरपूर्व तथा कोशल के दक्षिण यमना के तट से लेकर इलाहाबाद के पश्चिम तक थी।[६] इस जनपद का उल्लेख अन्य ब्राह्मण[७], जैन[८] तथा बौद्ध[९] ग्रन्थों में हुआ है।

विदेह—समराइच्च कहा में इसे केवल पूर्व विदेह कहा गया है।[१०] विदेह निवासिनी होने के कारण महावीर की माता त्रिशला 'विदेह दिन्ना'[११] (विदेह दत्ता) कही जाती थी तथा विदेह निवासिनी चेल्लना का पुत्र कूणिक वज्जि विदेह पुत्र कहा जाता था।[१२] इसकी राजधानी मिथिला थी जिसका जैन साहित्य में अत्यधिक महत्त्व है। १९ वें तीर्थंकर मल्लिनाथ तथा २१वें तीर्थंकर नमिनाथ की चरणरज से यह नगरी पवित्र हुई थी।[१३] शतपथ ब्राह्मण में विदेह का उल्लेख है।[१४] कालि-

१ डॉ० सी० सरकार—सेलेक्ट इन्स्क्रिप्सन्स, पृ० ३३३।
२. वही, पृ० ३४७।
३. सम० क० ६, पृ० ५०१—"दिन्नाए इमेण वच्छेसर सुयस्स....सिरि-विजयस्स।
४. महाभारत, सभा पर्व ३०।१०।
५. वही शान्ति पर्व, ४९।७९।
६. नन० लाल० डे—ज्योग्राफिकल डिक्शनरी, पृ० १००।
७. ऐतरेय ब्राह्मण, ८।१४।३।
८. उपासक दशा २, परिशिष्ट १, पृ० ७; निशीथचूर्णी ५, पृ० ५३७।
९. अंगुत्तर निकाय, १। २१३।
१०. सम० क० ६, पृ० ५७६—'ति समागओ पुव्व विदेहं'।
११ कल्पसूत्र, ५, १०९।
१२ व्याख्या प्रज्ञप्ति, ७, ९, पृ० ३१५।
१३. तिलोय पण्णत्ति, सोलापुर संस्करण—४, ५४४; ४, ५४६।
१४. शतपथ ब्राह्मण, १, ४; १, १०।

दास ने रघुवंश में भी इसका उल्लेख किया है।[1] इसे ही उत्तर काल में तिरभुक्त या तिरभुक्ति कहा गया है जो आधुनिक तिरहुत के नाम से प्रसिद्ध है। यह जनपद गण्डकी नदी से आधुनिक चम्पारन तक विस्तृत था[2] जो मगध के पूर्वोत्तर में स्थित था। सीता-गढ़ी, जनक पुर, सीताकुण्ड, तिरहुत का उत्तरी भाग, तथा चम्पारन का पश्चिमोत्तर भाग प्राचीन विदेह के अंतर्गत था।[3] मिथिला शरण पाण्डेय के अनुसार प्राचीन विदेह जनपद की सीमा के उत्तर में नैपाल की तराई, पूर्व में कोशी नदी, दक्षिण में वैशाली जनपद (जो कि गंगा के उत्तर में स्थित था), तथा पश्चिम में सदानीरा (आधुनिक गण्डक) नदी स्थित थी।[4]

नगर

अयोध्या—अयोध्या[5] को साकेत नाम से भी जाना जाता था।[6] साकेत की स्थिति कोसल जनपद के अन्तर्गत थी।[7] इसे प्राचीन अवध भी कहा जाता था जो आधुनिक फैजाबाद से चार मील की दूरी पर स्थित है।[8] यह रामचन्द्र तथा राजा सगर की भी राजधानी बतायी गयी है।[9] स्कन्द पुराण के अनुसार अयोध्या की स्थिति एक मछली के आकार जैसी है[10] तथा यह सरयू नदी से एक योजन दक्षिण तथा तमसा से एक योजन उत्तर दिशा में स्थित था; किन्तु वर्तमान अयोध्या सरयू नदी के तट पर ही स्थित है। आदि पुराण में अयोध्या को दो द्वीपों में स्थित बतलाया गया है—धातकी खण्ड और जम्बू द्वीप।[11]

---

१. रघुवंश, १२,२६।
२. डी०सी० सरकार—स्टडीज इन ज्योग्राफी आफ ऐंसियन्ट एण्ड मेडिवल इंडिया, पृ० ९५।
३. नेमिचन्द्र शास्त्री—आदि पुराण में प्रतिपादित भारत, पृ०६७।
४. एस० एस० पाण्डेय—हिस्टारिकल ज्योग्राफी एण्ड टोपोग्रैफी आफ बिहार, पृ० ८७-८८।
५. समका० ८, पृ० ७३१—अत्थि इहेव—अओज्झा नाम नयरी, पृ० ७३६, ७३८,७६४,७६६,७७४।
६. निशीथ चूर्णी २, पृ० ४६६;३, पृ० १९३।
७. सम० क० ४, पृ० ३३०.—'कोसलाए विसये साएए नयरे—।'
८. कनिंघम—ऐंसियन्ट ज्योग्राफी आफ इंडिया, पृ० ३४१।
९. वी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ ऐंसियन्ट इंडिया, पृ० ७६।,
१०. स्कन्द पुराण १।६४-६६।
११. आदि पुराण ७।४१; १२।७६।

धातकी खण्ड के पूर्व भाग में पश्चिम विदेह के गान्धिल देश की नगरी को अयोध्या कहा गया है तथा जम्बू द्वीप के अंतर्गत भरत क्षेत्र में यह नगरी तीर्थंकरों के साथ भरत चक्रवर्ती की जन्म भूमि बतायी गयी है। रामायण में इस नगरी की स्थिति सरयू नदी के तट पर बतायी गयी है। कनिंघम के अनुसार इस नगर का विस्तार बारह योजन अथवा १०० मील था जो लगभग २४ मील बागीचों (उपवनों) से घिरा हुआ था।[१] प्राचीन काल में यह धन-धान्य से परिपूर्ण एक समृद्धशाली नगर था।

अचलपुर—समराइच्च कहा में इसकी स्थिति उत्तरापथ में बतायी गयी है जो धन-धान्य से सम्पन्न एक व्यापारिक केन्द्र था।[२] इस नगर को आभीर देश में स्थित बताया जाता है।[३] कान्हा और वान नाम की दो नदियाँ अचलपुर के पास से होकर बहती थीं।[४] यह बरार में अमरावती जिले का आधुनिक इलिच पुर है।[५]

अमरपुर[६]—यह ब्रह्म देश की प्राचीन राजधानी थी। इसकी स्थिति ऐरावत नदी के पूर्व तट पर बतायी गयी है।[७] आदि पुराण में इसका वर्णन इन्द्र पुरी के रूप में आया है।[८] विष्णु कुण्डी वंश के राजा माधव वर्मा के शिलालेख में ब्रह्म देश की राजधानी अमरावती बतायी गयी है।[९] इस नगर के प्राप्त ध्वंसावशेषों से पता चलता है कि यह एक सुन्दर स्थान था जिसके कारण इसे अमरपुर कहा जाता था।

आनन्दपुर—समराइच्च कहा के कथा प्रसंग में ही इसकी चर्चा आई है; किन्तु स्थिति आदि का कोई उल्लेख नहीं है। बी० सी० ला के अनुसार इसका

१. कनिंघम—एंशियन्ट ज्योग्राफी आफ इंडिया, पृ० ४५९–६०।
२. सम० क० ६, पृ० ५०९।
३. ज्योग्राफिकल इनसाइक्लोपीडिया आफ एंशियन्ट एण्ड मेडिवल इंडिया, पृ० ३।
४. वही, पृ० ३।
५. इपि० इंडि० १, पृ० १३–जनवरी १९३५।
६. सम० क० ३, पृ० १७१; ६, पृ० ५००।
७. नेमिचन्द्र शास्त्री—हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक-परिशीलन, पृ० ३५४।
८. आदि पुराण ६।२०५।
९. नेमिचन्द्र शास्त्री—आदि पुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० ८३।
१०. सम० क० ५, पृ० ४००।

आधुनिक नाम आनन्द है जो आनन्द तालुक का प्रमुख नगर है।[१] कुछ विद्वान् इसे उत्तर गुजरात का बड़ा नगर मानते हैं।[2] ह्वेनसांग के अनुसार यह नगर वल्लभी के उत्तर-पश्चिम में स्थित था।[3] यह नगर व्यापार, वाणिज्य का भी प्रमुख केन्द्र माना जाता था। आनन्दपुर प्राचीन अनर्तपुर के नाम से भी जाना जाता था।[४] आनन्दपुर अथवा बड़नगर नागर नाम से विख्यात था जो गुजरात के नागर ब्राह्मणों का मूल निवास स्थान था।[५] यह जैन श्रमणों का भी केन्द्र था जहाँ से वे मथुरा को आते जाते रहते थे।[६]

उज्जयिनी[७]—हरिभद्र के काल में यह नगर जैन श्रमणों का प्रमुख निवास स्थान था। यह तत्कालीन भारत का समृद्धशाली नगर था जिसके बाजार माणिक्य, मोती, सुवर्ण आदि से हमेशा सजे रहते थे तथा इसमें आवागमन की सुविधा के लिए चौड़ी व विस्तृत सड़कें एवं सुन्दर मार्ग थे। यह सुन्दर स्वाइयों एवं जलाशयों से सुशोभित था। अन्य जैन ग्रन्थों से भी पता चलता है कि यह नगर व्यापार-वाणिज्य का प्रमुख केन्द्र था।[८] जीवन्त स्वामी प्रतिमा के दर्शन के लिए उज्जयिनी में राजा सम्प्रति के समकालीन आर्य सुहस्ति पधारे थे।[९] यह दक्षिणा पथ का सबसे महत्त्वपूर्ण नगर था जो उत्तर अवन्ति (मालवा) राज्य का केन्द्र था।[10] कनिंघम के अनुसार यह आधुनिक उज्जैन था जो शिप्रा नदी के तट पर स्थित था।[११] अतः स्पष्ट होता है कि समराइच्च कहा में

---

१. बी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ एंसियन्ट इंडिया, पृ० ३२५।
२. मधु सेन—ए कल्चरल स्टडी आफ निशीथ चूर्णी, पृ० ३३९।
३. कनिंघम—ऐंसियन्ट ज्योग्राफी आफ इण्डिया, पृ० ४१६।
४. अलिना का ताम्र पत्र अभिलेख ई० सन् ६४९ और ८५१ का।
५. ज्योग्राफिकल इनसाइक्लोपीडिया आफ एंसियन्ट एण्ड मेडिवल इंडिया, पार्ट १, पृ० २१-२२।
६. निशीथचूर्णी ५, पृ० ४३५।
७. सम० क० ६, पृ० ५०१–५०३–५६९–७०–७१; ९, पृ० ८५८–९७९।
८. आवश्यक निर्युक्ति १२७६; आवश्यक चूर्णी २, पृ० १५४; निशीथ चूर्णी १, पृ० १०२; २, पृ० २६१; ३, पृ० ५९, १३१, १४५–४६।
९. वृहत्कल्प भाष्य १।३२७७।
१०. जगदीश चन्द्र जैन—जैनागम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० ४८०–८१।
११. कनिंघम—ऐंसियन्ट ज्योग्राफी आफ इंडिया, पृ० ४१२।

उल्लिखित इस नगर की पहचान वर्तमान उज्जैन में की जा सकती है जो मध्य प्रदेश में स्थित है।

काकन्दी—समराइच्च कहा में इस नगर की स्थिति जम्बू द्वीप के भारत वर्ष में बताई गयी है।[1] भगवती सूत्र में भी काकन्दी का उल्लेख प्राप्त होता है।[2] काकन्दी काकन्द नामक साधु का निवास स्थान था (काकन्दा का निवासी काकन्दी)।[3] जैनियों के अनुसार काकन्दी तीर्थंकर सुविधि नाथ का जन्म स्थान था।[4] जैनियों के तीर्थंकर सुविधिनाथ का जन्म स्थान काकन्दी मध्यकालीन भारत का काकन नामक वह स्थान है जो बिहार में मुंगेर जिले के जमुई नामक तहसील में सिकन्दराबाद पुलिस स्टेशन के अन्तर्गत विद्यमान है।[5]

कनकपुर—समराइच्च कहा में इसे एक नगर राज्य बताया गया है जो वहाँ के राजा द्वारा सुरक्षित एवं सुव्यवस्थित था।[6] जैन ग्रन्थ आवश्यक चूर्णी से पता चलता है कि इस नगर की स्थापना विजयासथु नामक राजा ने की थी।[7] प्राचीन परम्परा के अनुसार कनकपुर को राजगृह का दूसरा नाम बताया जाता है[8] जो आधुनिक बिहार मे स्थित था।

कांपिल्य नगर—समराइच्च कहा में इस नगर का उल्लेख कथा प्रसंग मे हुआ है।[9] यद्यपि यहाँ इसकी भौगोलिक स्थिति पर प्रकाश नहीं डाला गया है; किन्तु अन्य साक्ष्यों मे इसकी स्थिति आदि का पता चलता है। विविध तीर्थ कल्प में इस नगर की स्थिति गंगा के तट पर बताई गयी है।[10]

१. सम० क० ५, पृ० ३६३—(अत्थि इहेव जम्बूद्दीवे भारहे वासे कायन्दी नामनयरं)।
२. भगवती सूत्र १०।४।४०४।
३. बरुआ और सिनहा—भरहुत, इन्सक्रिप्सन्स, पृ० १८।
४. डी० सी० सरकार—स्टडीज इन ज्योग्राफी आफ ऐंसियन्ट एण्ड मेडिवल इंडिया, पृ० २५४।
५. वही, पृ० २५४–५५।
६. सम० क० ८, पृ० ७८१।
७. आवश्यक चूर्णी २, पृ० १५८।
८. दी ज्योग्राफिकल इन साइक्लोपीडिया आफ ऐंसियन्ट एण्ड मेडिवल इंडिया, पृ० ८६।
९. सम० क० १, पृ० ४७; ५, पृ० ४७४।
१०. विविधतीर्थ कल्प, पृ० ५०—'पंचाला नाम जणवओ। तत्थ गंगा नाम महानई तरंगमें पक्खालिज्जमाणपामार भित्तिअं कपिलपुरं नाम नयरं।

इस नगर का उल्लेख रामायण तथा महाभारत में भी हुआ है।[१] यह बहुत ही धनी, सम्पन्न नगर था।[२] औपपातिक सूत्र में कांपिल्यपुर अथवा कांपिल्य नगर (कंपिल-जिला फरूखाबाद) गंगा के तट पर अवस्थित बताया गया है।[३] कनिंघम ने भी इस नगर की स्थिति गंगा के तट पर बदायूँ और फरूखाबाद के बीच में बतायी है।[४] स्पष्टतः यह वर्तमान उत्तर प्रदेश में स्थित फरूखाबाद जिले का कंपिल नामक स्थान है।

कुसुमपुर[५]—मगध की प्रसिद्ध राजधानी पाटलिपुत्र को ही कुसुमपुर के नाम से जाना जाता था।[६] यह वर्तमान बिहार प्रदेश की राजधानी पटना है जिसे प्राचीन काल में कुसुमपुर, कुसुमध्वज, पुष्पपुर, पुष्पभद्र तथा पाटलिपुत्र आदि विविध नामों से जाना जाता था।[७] संभवतः कुसुमों (पुष्पों) की बहुलता के कारण ही इसे कुसुमपुर कहा जाने लगा था। निशीथ चूर्णी में भी इसका उल्लेख मिलता है।[८] यह नगर व्यापार-वाणिज्य का भी केन्द्र था तथा यहाँ का माल सुवर्णभूमि तक जाता था।[९]

कौशाम्बी—समराइच्च कहा में जम्बूद्वीप के दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र में इसकी स्थिति बतायी गयी है।[१०] कौशाम्बी वत्स अथवा वंग जनपद की राजधानी थी। यह आधुनिक कोसम है जो यमुना नदी के तट पर इलाहाबाद के दक्षिण-पश्चिम में ३० मील की दूरी पर स्थित है।[११] यह नगर चेदिवंश के राजा उपकार वसु के तीसरे पुत्र राजकुमार कोशाम्ब के द्वारा बसाया गया था।[१२] ह्वेन्सांग ने सातवीं शताब्दी में कौशाम्बी की यात्रा की थी। उसके अनुसार यह जनपद ६,००० ली से भी अधिक विस्तृत क्षेत्र वाला था और इसकी राजधानी

---

१. रामायण—आदि काण्ड, सर्ग ३३, पद्य १९; महाभारत १।१३८।७३–७४।
२. जातक ६, ४३३।
३. औपपातिक सूत्र ३९।
४. कनिंघम—ऐंसियन्ट ज्योग्राफी आफ इंडिया, पृ० ४१३।
५. सम० क० १, पृ० ५१; ४, पृ० २४३; ८, पृ० ८१२।
६. जगदीचन्द्र जैन—जैनागम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० ४६२।
७. जे० सी० सिकदार—स्टडीज इन दी भगवती सूत्र, पृ० ५४५।
८. निशीथ चूर्णी २, पृ० ९५।
९. जगदीशचन्द्र जैन—जैनागम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० ४६३।
१०. सम० क० ३, पृ० १६२; ४, पृ० ३५३; ६, पृ० ५७६, ५७८, ५८१, ५८२, ५८४।
११. कनिंघम—ऐन्सियन्ट ज्योग्राफी आफ इंडिया, पृ० ३३०-३४।
१२. महाभारत १।६३।३१।

३० ली के करीब में विस्तृत थी ।[1] यह एक पवित्र नगरी थी ।[2] यह गर्म जलवायु वाला उपजाऊ भाग था जहां के लोग चावल तथा गन्ना अधिक पैदा करते थे ।[3] भगवान् बुद्ध वहां ठहरा करते थे तथा भगवान् महावीर ने यहां विहार किया था ।[4]

कृतंगला—जम्बू द्वीप के विजय क्षेत्र में इस नगर की स्थिति बतायी गयी है ।[5] इस नगर की पहचान ठीक-ठीक नहीं की जा सकती ।

गांधार नगर—समराइच्च कहा में इस नगर की स्थिति गांधार जनपद के अन्तर्गत बतायी गयी है ।[6] किन्तु अन्यत्र इसका प्रमाण नहीं मिलता है और न तो वर्तमान पहचान ही की जा सकती है ।

गजपुर[7]—समराइच्च कहा के कथा प्रसंग में इस नगर का उल्लेख मात्र है । आदि पुराण में इस नगर की स्थिति विजयार्ध के दक्षिण में मानी गयी है ।[8] गजपुर हस्तिनापुर का दूसरा नाम था जो कुरु जनपद की राजधानी थी ।[9] गजपुर का दूसरा नाम नागपुर भी था । वासुदेव हिण्डी में इसे ब्रह्मस्थल कहा गया है ।[10]

गन्ध समृद्ध नगर—वैताढ्य पर्वत पर स्थित यह विद्याधरों का एक नगर बताया गया है ।[11] मोहनलाल मेहता ने इसे अपर विदेह में स्थित गांधार जनपद का प्रधान नगर माना है ।[12] नेमिचन्द्र शास्त्री के अनुसार यह मालवा में स्थित रहा होगा ।[13]

१. वी० सी० ला--हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ एंसियन्ट इंडिया, पृ० ११७ ।
२. विविध तीर्थ कल्प, पृ० २३; आवश्यक चूर्णी, २, १७९ ।
३. वी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ एंसियन्ट इंडिया, पृ० ११७ ।
४. जगदीश चन्द्र जैन—जैनागम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० ४७५ ।
५. सम० क० ३, पृ० १७३; ७, पृ० ७०८ ।
६. वही १, पृ० ४८, ५१ ।
७. वही ७, पृ० ६१८ ।
८. नेमिचन्द्र शास्त्री—आदि पुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० ८६ ।
९. जगदीश चन्द्र जैन--जैनागम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० ४६९ ।
१०. वासुदेव हिण्डी, पृ० १६५ ।
११. सम० क० ५, पृ० ४११ ।
१२. मोहन लाल मेहता—प्राकृत प्रापर नेम्स, पृ० २२२ ।
१३. नेमिचन्द्र शास्त्री—हरिभद्र सूरि के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ० ३५६ ।

चक्रपुर—यह नगर जम्बू द्वीप के अपर विदेह क्षेत्र में विद्यमान था।[1] नेमिचन्द्र शास्त्री के अनुसार इसे आधुनिक उड़ीसा का चक्रपुर कहा जा सकता है।[2]

चक्रवालपुर—यह जम्बू द्वीप के विजय क्षेत्र में विद्यमान था।[3] वासुदेव शरण अग्रवाल ने इसे वर्तमान चक्रवाल कहा है जो जिला झेलम में विद्यमान है।[4]

चम्पापुरी—समराइच्च कहा मे इस नगरी का उल्लेख कई बार किया गया[5] है तथा इसे समस्त गुणों का भण्डार बताया गया है। चम्पा अंग देश की राजधानी थी जो पहले मालिनी के नाम से विख्यात थी।[6] यह चम्पा नगरी, चम्पा मालिनी, चम्पावती, चम्पापुरी और चम्पा आदि विभिन्न नामों से जानी जाती थी। महाभारत के अनुसार यह एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान था।[7] औपपातिक सूत्र में इस नगरी को धन-धान्य से परिपूर्ण बताया गया है।[8] चम्पा और मिथिला के बीच साठ योजन का अन्तर बताया गया है।[9] बी० सी० ला के अनुसार यह नगर बिहार प्रदेश के वर्तमान भागलपुर से पश्चिम चार मील की दूरी पर स्थित था।[10] चम्पापुरी की पहचान भागलपुर के पास वर्तमान नाथ नगर से की जा सकती है।

जयपुर—इस नगर की स्थिति जम्बू द्वीप के अपर विदेह क्षेत्र में बतायी गयी है।[11] इसे अपरिमित गुणों का निधान तथा पृथ्वी का तिलक स्वरूप बताया

---

१. सम० क० ८, पृ० ८०३।

२. नेमिचन्द्र शास्त्री—हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ० ३५६।

३. सम० क० २, पृ० ११०; ५, पृ० ४५५, ४६३; ८, पृ० ७३६।

४. वासुदेव शरण अग्रवाल—पाणिनि कालीन भारत, पृ० ८८।

५. सम० क० २, पृ० १०४, १३०; ७, पृ० ६०५, ६१८, ६२३, ६२४, ६५२, ६७०-७१।

६. मत्स्य पुराण अध्याय ४८।

७. महाभारत, वन पर्व, ८५।१४।

८. बी० सी० ला—सम जैन कैनानिकल सूत्र, पृ० ७३ वाम्बे ब्रांच आफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बाम्बे १९४९।

९. जगदीश चन्द्र जैन—जैनागम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० ५६५।

१०. बी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ एंसियन्ट इण्डिया, पृ० २५५।

११. सम० क० २, पृ० ७५, १५१।

गया है। यह नगर वैतरणी नदी के तट पर कटक जिले में विद्यमान है। ह्वेन-सांग के समय में यह उड़ीसा की राजधानी थी।[१]

जयस्थल—समराइच्च कहा में इस नगर की स्थिति जम्बू द्वीप के विजय क्षेत्र में बतायी गयी है।[२] इसका उल्लेख अन्यत्र नहीं मिलता है और न तो ठीक-ठीक पहचान ही हो सकती है।

टंकनपुर—यह नगर जम्बू द्वीप के विजय क्षेत्र में स्थित बताया गया है।[३] इस नगर की भी वर्तमान स्थिति का पता नहीं चलता है।

थानेश्वर[४]—समराइच्च कहा में इसका उल्लेख मात्र है तथा वर्णन के समय इसके भौगोलिक स्थिति पर ठीक-ठीक प्रकाश नहीं पड़ता। अन्य साक्ष्यों के आधार पर इस नगर की स्थिति आदि का पता चलता है। इसे स्थानेश्वर नाम से भी जाना जाता था। कहा जाता है कि यहाँ ईश्वर या महादेव का निवास स्थान था इसी कारण इसे स्थानेश्वर कहा जाने लगा।[५] इसका उल्लेख विनय महावग्ग[६] तथा दिव्यावदान[७] में भी हुआ है। प्राचीन भारत का प्रसिद्ध रणक्षेत्र स्थानेश्वर के दक्षिण में स्थित है जो कि अम्बाला से ३० मील दक्षिण तथा पानीपत के ४० मील उत्तर में विद्यमान है।[८] इस नगर में १२०० फीट वर्गाकार एक पुराना टूटा हुआ किला प्राप्त हुआ है।[९] सातवी शताब्दी में थानेश्वर एक अलग स्वतन्त्र राज्य का केन्द्र था जिसे ह्वेनसांग ने सा-ता-नि-सी-फा-लो अथवा स्थानेश्वर कहा है तथा जो ७००० ली अथवा ११६७ मील विस्तृत क्षेत्र वाला था।[१०] यस० यन० मजूमदार ने इसे आधुनिक पूना (स्थूना) कहा है।[११]

---

१. वी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ एंसियन्ट इण्डिया, पृ० १८५।
२. सम० क० ३, पृ० १८५; ५, पृ० ३८८, ३९१।
३. सम० क० ३, पृ० १७२।
४. सम० क० ३, पृ० १८१।
५. वी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ एंसियन्ट इंडिया, पृ० १५२।
६. महावग्ग १२-१३।
७. दिव्यावदान, पृ० २२।
८. वी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ एंसियन्ट इंडिया, पृ० १५२।
९. कनिंघम—एंसियन्ट ज्योग्राफी आफ इंडिया, पृ० ३७६, ७०१।
१०. वी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ एंसियन्ट इंडिया, पृ० ३७६-७७।
११. यस० यन० मजूमदार—कनिंघम—एंसियन्ट ज्योग्राफी आफ इण्डिया, भूमिका।

दंतपुर[१]—यह नगर कलिंग जनपद की राजधानी थी।[२] इन्द्रवर्मन के जिरजिंगी ताम्रपत्र अभिलेख में दंतपुर का वर्णन मिलता है। इसमें दंत पुर को देवताओं की नगरी अमरावती से भी सुन्दर बताया गया है।[3] यह महाभारत का दंतपुर या दंतकुर है।[४] आवश्यक निर्युक्ति में दंत वक्क को दंतपुर का शासक बताया गया है।[५] यह नगर गोदावरी नदी पर स्थित वर्तमान राजमहेन्द्री (राजमुन्द्री) है।[६] नन्दलाल डे ने इसकी पहचान उड़ीसा में वर्तमान पुरी में की है।[७]

देवपुर[८]—समराइच्च कहा में इस नगर की स्थिति पर प्रकाश नहीं डाला गया है। कुछ विद्वानों ने इसे मध्य प्रदेश के रायपुर जिले में महानदी और पिपरी के संगम पर रायपुर नगर के २४ मील दक्षिण पूर्व में स्थित आधुनिक राजिम बताया है।[९] किन्तु बी० सी० ला ने इसकी पहचान चिकाकोल में स्थित देवदी में की है।[१०]

धान्यपूरक[११]—संभवतः यह आदि पुराण का धान्यपुर नगर है।[१२] आदि पुराण में धान्यपुर नगर के साथ श्री पाल की कथा का सम्बन्ध बताया गया है। इस नगर के राजा विशाल की कन्या विमल सेना का विवाह श्री पाल के साथ हुआ था।[१३] इस नगर की पहचान ठीक ढंग से नही की जा सकती।

पाटलापथ—समराइच्च कहा के कथा प्रसंग मे इसका उल्लेख है।[१४] यह

१. सम० क० ६, पृ० ५२९।
२. जातक २, ३६७-३७१; ३, ३७६; ४, २३०-२३२-२३७।
३. इपि० इंडि० २५, प्लेट ५, पृ० २८५, अप्रैल १९४०।
४. महाभारत—उद्योग पर्व ६३, १८३।
५. आवश्यक निर्युक्ति १२७५।
६. वी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ ऐंसिएन्ट इंडिया, पृ० १७७।
७. यन० यल० डे—ज्योग्राफिकल डिक्शनरी, पृ० ५३।
८. सम० क० ६, पृ० ५४१, ४२, ५४४, ५८७, ५५०।
९. दी ज्योग्राफिकल इनसाइक्लोपीडिया आफ ऐंसियन्ट एण्ड मेडिवल इंडिया, पृ० १०८।
१०. वी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ ऐंसियन्ट इंडिया, पृ० १७८।
११. सम० क० ४, पृ० ३०८।
१२. आदि पुराण ८।२३०; ४७।१४६।
१३. वही ४७।१४६।
१४. सम० क० ७, पृ० ७१३।

पाटला के नाम से भी जाना जाता था जो सिंधु नदी के मुहाने पर स्थित है।[१] यह सिंधु नदी के निचले भाग से सींचे जाने वाले प्रदेश की राजधानी थी जिसको ग्रीक में पाटलीव कहा गया है।[२]

पाटलिपुत्र[3]—इस नगर का उल्लेख अन्य जैन ग्रन्थों में भी हुआ है।[४] यह नगर राजगृह के पास मगध की दूसरी राजधानी थी। यह आधुनिक पटना है जो बिहार प्रदेश की राजधानी है। इसे पाटलिपुत्र, कुसुमपुर, कुसुमध्वज, पुष्प-पुर तथा पुष्प मय आदि विभिन्न नामों से जाना जाता था।[५] पाटलिपुत्र पहले मगध जनपद का एक गाँव था जो पाटलिग्राम के नाम से जाना जाता था।[६] इसकी स्थिति गंगा नदी के दूसरी तरफ स्थित कोटिग्राम के सामने थी।[७] गौतम बुद्ध के समय मगध के दो मंत्री—सुनिध तथा वस्सकार के द्वारा यहाँ पाटलिपुत्र नामक नगर बसाया गया था।[८] मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र का अच्छा वर्णन किया है। उसके अनुसार अन्दर खाई से २४ फीट की दूरी पर चार-दीवालों से घिरे हुए नगर में ६४ फाटक तथा ५७० मीनार विद्यमान थे।[९] फाहियान के समय में यहाँ के लोग धनी, सम्पन्न एवं खुशहाल थे।[१०] ह्वेनसांग ने इस नगर की स्थिति गंगा के दक्षिण तरफ बतायी है।[११]

ब्रह्मपुर—समराइच्च कहा में इस नगर की स्थिति उत्तरापथ में बतायी गयी है।[१२] ह्वेनसांग ने ब्रह्मपुर की यात्रा की थी। उसके अनुसार ब्रह्मपुर राज्य

१. बी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ एंसिएन्ट इंडिया, पृ० १३७।
२. बोगल—नोट्स आन टालेमी, १, पृ० ८४।
३. सम० क० ४, पृ० ३३९।
४. भगवती सूत्र १४।८।५२९; आवश्यक चूर्णी २, पृ० १७९; आवश्यक निर्युक्ति १२७९।
५. सिकदार—स्टडीज इन दी भगवती सूत्र, पृ० ५४५।
६. एम० एस० पाण्डेय—हिस्टारिकल ज्योग्राफी एण्ड टोपोग्रैफी आफ बिहार, पृ० १३५।
७. बी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ एंसिएन्ट इण्डिया, पृ० २९५।
८. दीघनिकाय, २, ८६; सुमंगल विलासिनी २, पृ० ५४०।
९. मैकक्रिण्डिल—एंसियन्ट इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाई मेगस्थनीज एण्ड एरियन, पृ० ६७।
१०. लीग (Legge)—फाहियान, पृ० ७७-७८।
११. वाटर्स—आन युवांग च्वांग २, पृ० ८७।
१२. सम० क० ८, पृ० ८२७; ९, पृ० ९५६।

४००० ली अथवा ७७१ मील में विस्तृत था।[1] इसके अंतर्गत अलखनन्दा तथा कर्नाली नदियों के बीच का सम्पूर्ण पहाड़ी भाग रहा होगा जो आजकल गढ़वाल और कुमायूं के नाम से प्रसिद्ध है।[2]

भंभा नगर—समराइच्च कहा में इसका उल्लेख एक नगर राज्य के रूप में हुआ है जिसकी स्थिति जम्बू द्वीप के विजय क्षेत्र में बतायी गयी है।[3] नेमिचन्द्र शास्त्री ने इसकी स्थिति आधुनिक आसाम में बतायी है।[4] किन्तु इसकी पहचान ठीक ढंग से नहीं हो पाती।

मदनपुर—समराइच्च कहा में मदनपुर को कामरूप जनपद के अंतर्गत बतलाया गया है। यहाँ का राजा प्रद्युम्न था।[5] कामरूप वर्तमान असम माना गया है जिसकी पहचान गौहाटी के आस-पास वाले भाग से की गयी है। अतः मदनपुर की स्थिति भी गौहाटी के आस-पास मानी जा सकती है।

महासर[6]—इस नगर की पहचान आधुनिक बिहार के शाहाबाद जिले में आरा से ६ मील पश्चिम में वर्तमान कामसार से की जा सकती है।[7]

माकन्दी[8]—समराइच्च कहा में उल्लिखित यह नगर दक्षिण पांचाल की राजधानी थी।[9] इस नगर की स्थिति हस्तिनापुर के आस-पास रही होगी, क्योंकि महाभारत के अनुसार युधिष्ठिर ने दुर्योधन से जो पाँच गाँव माँगे थे, माकन्दी उनमें से एक था।[10] यह नगर व्यापार-वाणिज्य का केन्द्र था।[11]

---

१. कनिंघम—एंशियन्ट ज्योग्राफी आफ इंडिया, पृ० ४०७।
२. एन० एल० डे—ज्योग्राफिकल डिक्शनरी आफ एंशियन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया, पृ० ८०।
३. सम० क० ८, पृ० ८०५।
४. नेमिचन्द्र शास्त्री—हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ० ३५८।
५. सम० क० ९, पृ० ९०४।
६. वही ६, पृ० ५०८, ५१८।
७. एस० एस० पाण्डेय—हिस्टारिकल ज्योग्राफी एण्ड टोपोग्राफी आफ बिहार, पृ० १५७।
८. सम० क० ६, पृ० ४९३, ५००।
९. जगदीश चन्द्र जैन—जैनागम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० ४७०।
१०. महाभारत ५, ७२-७६।
११. सम० क० ६, पृ० ५१०।

मिथिला[1]—समराइच्च कहा में उल्लिखित इस नगर का नाम रामायण तथा महाभारत में भी आया है।[2] मिथिला प्राचीनकाल में विदेह जनपद की राजधानी थी। पुराणों में निमि के पुत्र जो जनक के नाम से विख्यात थे, इस नगरी के निर्माता थे।[3] इसे आधुनिक नैपाल की सीमा के अन्तर्गत रखा जा सकता है। विविध तीर्थ कल्प में बताया गया है कि मिथिला में अनेक कदली वन, मीठे पानी की बावड़ियाँ, कुएँ, तालाब, नदियाँ आदि मौजूद थे। नगरी के चारो द्वारों पर चार बड़े बाजार थे तथा यहाँ के साधारण लोग भी पढ़े-लिखे एवं शास्त्रों के पंडित होते थे।[4]

रत्नपुर—समराइच्च कहा में रत्नपुर को विदेह क्षेत्र के गंधिलावती देश का एक नगर बताया गया है।[5] नेमिचन्द्र शास्त्री ने इसे कोसल जनपद का एक नगर बताया है।[6]

रथनूपुर चक्कवालपुर—यह विद्याधरों का एक नगर-राज्य था जिसकी स्थिति वैताढ्य पर्वत के निकट बतायी गयी है।[7] आदि पुराण में इसे विजयार्ध की दक्षिणी श्रेणी का २२ वाँ नगर बताया गया है।[8] इसकी वर्तमान स्थिति भारत के पूर्वी प्रदेश चाइबासा के निकट मानी जा सकती है।[9]

रथवीरपुर—यह जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र का एक नाम था।[10] इसकी वर्तमान स्थिति का ठीक-ठीक पता नहीं चलता है।

राजपुर—इस नगर की स्थिति विजयार्ध में बतायी गयी है।[11] यह काश्मीर के दक्षिण में स्थित राजौरी माना जा सकता है। कनिंघम के अनुसार राजपुर

---

१. सम० क० ८, पृ० ७७८-७८१।
२. रामायण १, ४८, १०-११; महाभारत, वनपर्व, २५४, ८।
३. भागवत पुराण ९, १३, १३।
४. विविध तीर्थ कल्प, पृ० ३२।
५. सम० क० २, पृ० १२०—'इहेव विदेहे गंधिल्लावई विजये रयणउरे नयरे।'
६. नेमिचन्द्र शास्त्री—आदि पुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० ९२।
७. सम० क० ५, पृ० ४६३।
८. आदि पुराण १९।४६।
९. नेमिचन्द्र शास्त्री—आदि पुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० ९२।
१०. सम० क० २, पृ० १२५।
११. वही, २, पृ० १०३; ७, पृ० ६३२-३३, ६५२, ६६०, ६६५, ६७२; ८, पृ० ८१३।

उत्तर में पीर पांचाल, पश्चिम में पूनच, दक्षिण में भीमबार तथा पूरब में रिहासी और अकनूर से घिरा हुआ था।[१]

लक्ष्मी निलय—समराइच्च कहा में इस नगर की स्थिति जम्बू द्वीप के विजय क्षेत्र में बतायी गयी है।[२] लक्ष्मी निलय के पास ही लक्ष्मी पर्वत विद्यमान था। किन्तु इसकी स्थिति तथा वर्तमान पहचान नहीं की जा सकती।

वर्धनापुर—यह नगर जम्बू द्वीप के उत्तरापथ में स्थित बताया गया है।[3] किन्तु अन्यत्र इसका उल्लेख नहीं है और न तो पहचान ही की जा सकती है।

बसन्तपुर[४]—सूय निर्युक्ति में इसे मगध जनपद का एक ग्राम बतलाया गया है।[५] कुछ विद्वानों ने इसे पूर्णिया जिले में स्थित बसन्तपुर ग्राम ही माना है।[६]

वाराणसी[७]—यह काशी जनपद की राजधानी थी। वरुणा और असि दो नदियों के बीच में स्थित होने के कारण ही इसे वाराणसी कहा गया है। यह वर्तमान बनारस (वाराणसी) है जो गंगा के तट पर स्थित है। यह काशी जनपद की एक पवित्र व धार्मिक नगरी थी।[८] इसका वर्णन अन्य जैन,[९] बौद्ध[१०] तथा ब्राह्मण[११] ग्रन्थों में आया है। वाराणसी सातवें और बारहवें तीर्थंकर भगवान सुपार्श्व तथा भगवान पार्श्वनाथ का जन्मस्थान था।[१२] यह ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन संस्कृति का विकास क्षेत्र रहा है।

विलासपुर[१३]—इस नगर की स्थिति विजयार्ध के दक्षिण में बतायी गयी है

---

१. कनिघम—एंसियन्ट ज्योग्राफी आफ इंडिया, पृ० १४८-४९।

२. सम० क० ३, पृ० १६८; १७२-७३-७४, १८८।

३. वही ८, पृ० ७११।

४. सम० क० १, पृ० ११-३३-४३।

५. सूय निर्युक्ति २, ६, १९०।

६. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, पूर्णिया, १९११, पृ० १८५।

७. सम० क० ८, पृ० ८४५।

८. भगवती सूत्र १५।१।५४०।

९. निशीथ चूर्णी २, पृ० ४१७, ४६६; पुन्नवन सुत्त, १।३७; उपासकदशा, पृ० ९०९।

१०. दीघ निकाय, २, १४६; ३, १४१।

११. विष्णु पुराण अध्याय ३४।

१२. उवासक निर्युक्ति ३८२, ३८४, १३०२।

१३. सम० क० ५, पृ० ४०९-४१२।

सम्भवतः यह हिमाचल प्रदेश का विलासपुर नगर है। समराइच्च कहा में इसका वर्णन विद्याधरों के नगर के रूप में हुआ है।[१]

विशालवर्धन[2]—यह नगर कादम्बरी अटवी के पास स्थित था। कादम्बरी अटवी की स्थिति के अनुसार यह बिहार में भागलपुर और मुंगेर के बीच में वर्तमान रहा होगा।

विशाला[3]—यह अवन्ति जनपद के अन्तर्गत एक प्रधान एवं सम्पन्न नगरी थी। समराइच्च कहा में इसे एक नगर राज्य कहा गया है।[४] यह नगर आजकल "बद्री विशाला" के नाम से जाना जाता है जिसे स्कन्द पुराण में 'विशालम् वद्रीम्' कहा गया है।[५]

विश्वपुर[६]—समराइच्च कहा में आये हुए इस नगर की स्थिति का ठीक-ठीक पता नहीं चलता है।

वैराट नगर[७]—हरिभद्र ने इसकी स्थिति श्रावस्ती से आगे समुद्र तट पर बतायी है जो कि काल्पनिक-सा लगता है। अन्य ग्रन्थों में वैराट नगर को मत्स्य देश की राजधानी बताया गया है जो इन्द्रप्रस्थ के दक्षिण में विद्यमान था।[८] मत्स्य देश के राजा विराट की राजधानी होने के कारण भी इसे वैराट नगर कहा जाता था। यह आधुनिक जयपुर की एक तहसील का केन्द्र स्थान है जो दिल्ली से १०५ मील दक्षिण पश्चिम तथा जयपुर से ४१ मील उत्तर में स्थित है।[९]

शंखपुर—समराइच्च कहा में इस नगर की स्थिति उत्तरापथ में बताई गई है।[१०] सम्भवतः यह स्थान राजगृह और द्वारिका के मध्य में था, क्योंकि विविध

१. सम० क० ५, पृ० ४१२।
२. वही, ७, पृ० ६७३।
३. वही, ४, पृ० २८९-३०८-३१२-३१४-३१८-३१९-३२६-३४५।
४. वही, ४, पृ० ३४५।
५. ए० वी० यल० अवस्थी—स्टडीज इन स्कन्द पुराण, पृ० १२६।
६. सम० क० ७, पृ० ६६७, ६६९, ६९०।
७. वही, ४, पृ० २८५।
८. महाभारत; विराट पर्व; गोपथ ब्राह्मण १, २, ९।
९. बी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ एंसियन्ट इंडिया पृ० ३९२-९३।
१०. सम० क० ८, पृ० ७३७, ७४०, ७४२, ७५६।

तीर्थ कल्प के अनुसार द्वारिका से श्री कृष्ण की और राजगृह से जरासंध की सेनाएँ युद्ध के लिए चलीं, ये दोनों सेनाएँ जहाँ मिलीं वहाँ अरिष्टनेमि ने शंखध्वनि की और शंखपुर नगर बसाया।[1]

शंखवर्धन—यह नगर जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में स्थित था;[2] किन्तु इसकी वर्तमान स्थिति का पता नहीं चलता है।

श्वेतविका[3]—इसे प्राचीन केकय जनपद को राजधानी बताया गया है। समराइच्च कहा में इसे एक नगर राज्य कहा गया है।[4] ताम्रलिप्ति से इसका व्यापार चलता था जो श्रावस्ती के उत्तर-पूर्व नैपाल की तराई में स्थित था।

साकेत[5]—यह नगर दक्षिण कोसल जनपद की राजधानी था। महाभाष्य में इसका उल्लेख आया है।[6] टालेमी ने इसे सागदा तथा फाहियान ने साची कहा है।[7] साकेत को ही अयोध्या भी कहा गया है (स्थिति तथा पहचान के लिए देखिए—अयोध्या नगर)।

सुशर्म नगर[8]—यह गुजरात प्रदेश का एक नगर था। प्राचीन काल में इसे व्यापार-वाणिज्य का केन्द्र माना जाता था जिसमें बड़े-बड़े व्यापारी निवास करते थे।[9]

श्रीपुर[10]—यह आधुनिक सिरपुर है जो वंशधारा नदी के बायें तट पर स्थित सर्वालिगम के उत्तर पश्चिम में गंजाम जिले में स्थित है।[11] यह विशाखापट्टम

---

१. नेमिचन्द्र शास्त्री—हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ० ३६० ।
२. सम० क० ७, पृ० ६१२, ६७३ ।
३. वही ५, पृ० ३६५–६६–६७, ३७६, ३८८, ३९८, ४०७, ४१६–१७, ४२०; ८, पृ० ८१५, ८३१ ।
४. वही ५, पृ० ३६५-६६-६७ ।
५. वही ४, पृ० २३१, ३३९ ।
६. महाभाष्य ३, ३, २, पृ० २४६, १, २, ३, पृ० ६०८ ।
७. लीग (Ligge)—ट्रेवेल्स आफ फाहियान, पृ० ५४ ।
८. सम० क० ४, पृ० २३४, २५७, २६८, २७०, ३६१ ।
९. वही ४, पृ० २६८ ।
१०. वही ५, पृ० ३९८-९९ ।
११. इपि० इंडि० ४, पृ० ११९ ।

जिले का सिरिपुरम भी हो सकता है जो नागवाली नदी से ३ मील दक्षिण में है जिसके उत्तरी किनारे पर कलिंग का प्रसिद्ध जिला वारहावर्दिन स्थित है।[1]

श्रावस्ती[2]—इस नगर का उल्लेख अन्य जैन ग्रन्थों में भी हुआ है।[3] कनिंघम ने इसे आधुनिक सहेत-महेत माना है।[4] यह उत्तर कोशल की राजधानी थी।[5] श्रावस्ती बौद्धों का केन्द्र स्थल था।[6]

हस्तिनापुर—इस नगर की स्थिति जम्बू द्वीप के विजय क्षेत्र में बतायी गयी है।[7] यह प्राचीन कुरु देश की राजधानी थी। इसकी वर्तमान स्थिति मेरठ जिले के मेवाना तहसील में बतायी गयी है।[8] हस्तिनापुर का उल्लेख अन्य जैन[9] तथा ब्राह्मण ग्रन्थों[10] में मिलता है। आदि पुराण में इस नगर का अत्यन्त समृद्ध और स्वर्ग के समान सुन्दर उल्लेख किया गया है।[11] इस नगर को कुरुजांगल जनपद की राजधानी बताया गया है। शांति, कुन्थु, अरह और मल्लिनाथ के सुन्दर एवं मनोहर चैत्यालय इसी नगरी में विद्यमान थे तथा अम्बा देवी का प्रसिद्ध मन्दिर भी यहीं विद्यमान था।[12] अतः पौराणिक दृष्टि से इस नगर का पर्याप्त महत्त्व है।

क्षितिप्रतिष्ठित[13]—यह राजगृह का दूसरा नाम था। समराइच्च कहा के अनुसार यह नगर ऊँची प्राकार खाइयों आदि से सुरक्षित था तथा नगर में

---

१. विशाख वर्मा का कोरासंड-ताम्रपत्र, इपि० इंडि० २१, पृ० २३-२४।
२. सम० क० ४, पृ० २५७, २६९, २७१, २८३-८४-८५-८६।
३. भगवती सूत्र २।१।९०; ९।३३।३८६; १५।१।५५३; निशीथ चूर्णी २, पृ० ४६६; ४, पृ० १०३।
४. कनिंघम—एंसियन्ट ज्योग्राफी आफ इंडिया, पृ० ४६९; देखिए—बी०सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ एंसियन्ट इंडिया, पृ० १२५।
५. जे० सी० सिकदार—स्टडीज इन भगवती सूत्र, पृ० ५३५।
६. जगदीश चन्द्र जैन—जैनागम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० ४८५।
७. सम० क० २, पृ० १२७, १७५।
८. कनिंघम—एंसियन्ट ज्योग्राफी आफ इंडिया, पृ० ७०२।
९. भगवती सूत्र ११।९।४१७; ११।१।४२८; १६।५।५७७।
१०. रामायण २, ६८, १३; मार्कण्डेय पुराण, अध्याय ५७; भागवत पुराण १३, ६।
११. आदि पुराण ८।२२३; ४३।७६।
१२. नेमिचन्द्र शास्त्री—आदि पुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० ९४।
१३. सम० क० १, पृ० ९, ४३; ९, पृ० ९७०-७१।

साफ-सुथरे त्रिपथ, चतुष्पथ आदि मार्ग थे। यहाँ व्यापार का भी केन्द्र था। निशीथ चूर्णी में भी इस नगर का उल्लेख मिलता है।[1] वर्तमान पटना का राजगिर ही प्राचीन भारत का राजगृह था। जैन ग्रन्थों में राजगृह को ही क्षितिप्रतिष्ठित, चणकपुर, ऋषभपुर अथवा कुशाग्रपुर कहा गया है।[2]

पत्तन—समराइच्च कहा में हमें जनपदों एवं नगरों के साथ-साथ कुछ पत्तनों के भी उल्लेख मिलते हैं। आदि पुराण के अनुसार जो भाग समुद्र के तट पर बसा हो तथा वहाँ नावों द्वारा आवागमन हो उसे 'पत्तन' कहते हैं।[3] मानसार,[4] समरांगण, तथा वृहत्कोश के आधार पर पत्तन को एक प्रकार का वृहत् बन्दरगाह माना जा सकता है जो किसी समुद्र या नदी के तट पर स्थित हो तथा जहाँ पर मुख्य रूप से वणिक लोग निवास करते हों।

व्यवहार सूत्र के अनुसार जहाँ नौकाओं द्वारा आवागमन होता है उसे 'पट्टन' और जहाँ नौकाओं के अतिरिक्त गाड़ी, घोड़ों आदि से आवागमन हो उसे 'पत्तन' कहते हैं।[5] इस प्रकार उपरोक्त साक्ष्यों के आधार पर हम पत्तन को दो भागों में बाँट सकते हैं—'जल पत्तन (पट्टन) तथा स्थल पत्तन'। समराइच्च कहा में उल्लिखित पत्तन का विवरण अधोलिखित है।

अचलपुर—समराइच्च कहा में इसे उत्तरा पथ का श्रेष्ठ व्यापारिक स्थान बताया गया है।[6] जम्बू द्वीप के उत्तरापथ में इसकी स्थिति बतलाई गयी है जो ब्रह्मपुर नगर के पास था। यह प्राचीन भारत का प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र था जहाँ के व्यापारी बड़े ही समृद्ध व धनवान होते थे। विशेष जानकारी के लिए देखिए—'अचलपुर' एक नगर के रूप में।

गउजनक—समराइच्च कहा में इसकी स्थिति उत्तरापथ विषय में बतायी

1. निशीथ चूर्णी ३, पृ० १५०; ४, पृ० २२०।
2. जगदीश चन्द्र जैन—जैनागम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० ४६१।
3. पत्तनं तत्समुद्रान्ते यन्नौभिवतीर्यते—आदिपुराण १६।१७२।
4. क्रय-विक्रय संयुक्तमब्धितीर समाश्रितम्। देशान्तर गतजनैर्नानाजातिभिरन्वितम्। पत्तनं तत् समाख्यातं वैश्यैरध्युषितं तु यत्।—मानसार, नवम अध्याय।
5. पत्तनं शकटैर्गम्यं घोटकैर्नाभिरेव च।
   नौभिरेव तु यद् गम्यं पट्टनं तत् प्रचक्षते। व्यवहार सूत्र भाग ३, पृ० १२७।
6. सम० क०, ६, पृ० ५०९—धरणोवि—उत्तरावहतिल्यभूयं अयलउरं नामपट्टणं।

गयी है।[1] इस पत्तन की भी स्थिति उत्तरापथ जनपद में बतायी गयी है। संभवतः यह मरु देश में मन्यपुर के निकट अवस्थित था जो आधुनिक मारवाड़ जिले में वर्तमान है।

गिरिस्थल[2]—गुजरात के प्रसिद्ध पर्वत गिरिनार के आस-पास गिरिस्थल नामक पत्तन विद्यमान था। स्थल मार्गों से यहाँ का व्यापार होता था।

श्रीस्थल—जम्बू द्वीप के विजय क्षेत्र में इस नगर की स्थिति बतायी गयी है।[3] किन्तु अन्यत्र इसका उल्लेख नहीं मिलता है तथा न तो ठीक ढंग से इसकी पहचान ही की जा सकती है।

शंखपुर—समराइच्च कहा में इसे उत्तरापथ विषय का एक पत्तन बताया गया है जहाँ के राजा का नाम शंखायन था[4]। इसकी स्थिति राजगृह और द्वारिका के मध्य में बतायी जा सकती है (देखिए—शंखपुर नगर)।

बन्दरगाह

आधुनिक काल की भाँति प्राचीन काल में भी व्यापार तथा आवागमन की सुविधा के लिए समुद्र के किनारे बन्दरगाह होते थे। ये बन्दरगाह बड़े जलयान तथा छोटे जहाज एवं नौकाओं के रुकने एवं वहाँ से प्रस्थान करने के केन्द्र स्थल होते थे। भारतीय तथा वैदेशिक व्यापारिक जलयानों का विश्राम स्थल होने के कारण ये बन्दरगाह व्यापारिक केन्द्र भी हो गये जहाँ से स्थल तथा जलमार्गों द्वारा व्यापार होता था। समराइच्च कहा में उल्लिखित दो प्रसिद्ध बन्दरगाहों की जानकारी हमे अधोलिखित ढंग से होती है।

ताम्रलिप्ति—इसका उल्लेख समराइच्च कहा में कई बार किया गया है।[5] पन्नवन सुत्त में ताम्रलिप्ति को बंग देश की राजधानी बताया गया है।[6] जगदीश

१. सम० क० ४, पृ० २७७—अत्थि इहेव भारहेवासे उत्तरावहे विसये गज्जणयं नाम पट्टणं।
२. वही ४, पृ० २७७—'गज्जणय सामिणो वीरसेणस्स समीवे।'
३. वही, ३, पृ० १७४।
४. वही ८, पृ० ७३७—'इओ य उत्तरावहे विसये संखउरे पट्टणे संखायणो नाम राया।'
५. वही १, पृ० ५६; ४, पृ० २४१–४२; ५, पृ० ३६७–६८–६९, ३९८, ४०७, ४१५–१६, ४२०; ६, पृ० ५९६, ५९९; ७, पृ० ६५२, ६७१।
६. पन्नवनसुत्त १, ३७, पृ० ५५।

चन्द्र जैन के अनुसार ताम्रलिप्ति (तामलुक) व्यापार का केन्द्र था जहाँ जल और स्थल दोनों मार्गों से व्यापार होता था।[1] कल्प सूत्र में ताम्रलित्तिया नामक जैन श्रमणों की शाखा का उल्लेख मिलता है जिससे पता चलता है कि यहाँ जैन श्रमणों का केन्द्र रहा होगा।[2] ताम्रलिप्ति बंगाल के मिदिनापुर जिले का तामलुक है जो हुगली तथा रूपनारायण नदियों के संगम से १२ मील की दूरी पर स्थित है।[3] इसकी वर्तमान स्थिति रूपनारायण नदी के पश्चिमी तट पर मानी जा सकती है। फाहियान ने इसे चम्पा से ५० योजन पूरब दिशा में समुद्र के किनारे स्थित माना है। ह्वेनसांग के अनुसार ताम्रलिप्ति में दस से अधिक बौद्ध मठ तथा लगभग एक हजार से अधिक बौद्ध भिक्षु विद्यमान थे।[4] इस बन्दरगाह का उल्लेख अन्य जैन,[6] बौद्ध[7] तथा ब्राह्मण[8] ग्रन्थों में मिलता है।

वैजयन्ती—समराइच्च कहा में इसकी स्थिति पूर्वी समुद्रतट पर बतायी गयी है।[9] ताम्रलिप्ति की भांति यह भी एक सुप्रसिद्ध बंदरगाह था। बड़े-बड़े विदेशी तथा स्वदेशी व्यापारिक जलयान व्यापार के निमित्त यहाँ आते-जाते रहते थे। बंदरगाह के साथ-साथ यह व्यापारिक केन्द्र भी बन गया था जहाँ भारतीय व्यापारी स्थल मार्गों से भी व्यापार के निमित्त आते जाते रहते थे। समराइच्च कहा के उल्लेख के आधार पर वैजयन्ती को वर्तमान बंगाल की खाड़ी वाला भाग कहा जा सकता है।

अरण्य

प्राचीन काल में ही पर्वत तथा नदियों की भांति अरण्यों का भी भौगोलिक एवं आर्थिक महत्त्व रहा है। विभिन्न प्रकार की भूमि तथा जलवायु के कारण ये अरण्य भांति-भांति प्रकार की वनस्पतियों के उद्गम स्थल रहे हैं जिनका विशिष्ट आर्थिक महत्त्व है। समराइच्च कहा में प्रयुक्त हुए कुछ निम्नलिखित वन्य प्रदेशों का उल्लेख मिलता है।

---

१. जगदीश चन्द्र जैन—जैनागम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० ४६५-६६।
२. वही पृ० ४६५–६६।
३. कनिंघम—एंशियन्ट ज्योग्राफी आफ इंडिया, पृ० ५७७–७८।
४. वही पृ० ७३२।
५. वाटर्स—आन युवांग च्वांग, २, १९०।
६. भगवती सूत्र ३।१।१३४।
७. कथासरित्सागर-अध्याय २४; महावंश ११, ३८; १९, ६।
८. महाभारत—भीष्म पर्व, ९, ५७; रघुवंश ४।३८।
९. सम० क० ६, पृ० ५३९।

कादंबरी—समराइच्च कहा में अचलपुर और माकन्दी के बीच इस अरण्य की स्थिति बताई गयी है।[1] यह एक महाटवी के रूप में थी जो संभवतः आधुनिक बिहार के मुंगेर जिला में स्थित रही होगी। इस आटवी में कदम्ब के वृक्षों की अधिकता थी। संभवतः इसी कारण इसका नाम कादम्बरी पड़ा था। कदम्ब के साथ-साथ वहाँ चंदन तथा आम्र आदि विशाल वृक्षों की अधिकता थी। सघन वृक्षों व जंगली झाड़ियों के बीच वृषभ, मृग, महिष, शार्दूल, हस्ति, मृगराज जैसे भयंकर जानवर निवास करते थे। कादम्बरी चम्पा के निकट स्थित थी जिसके निकट काली नामक एक पर्वत था तथा जहाँ भगवान पार्श्वनाथ भ्रमण किये थे।[2]

चन्दनवन[3]—यह मलय पर्वत के पास ही स्थित था[4] जिसकी स्थिति मैसूर के दक्षिण और त्रावणकोर के पूर्व में बतायी गयी है। चन्दन के वृक्षों की अधिकता के कारण ही इसे चन्दनवन कहा जाता था।

दंत रत्तिका[5]—चम्पानगरी से ताम्रलिप्ति जाते समय रास्ते में इसकी स्थिति बताई गयी है। समराइच्च कहा में उल्लिखित इस महाटवी की पहचान ठीक ढंग से नहीं हो पाती।

नन्दनवन[6]—इस अरण्य की भी स्थिति का पता नहीं चलता है। यह परम्परागत काल्पनिक नाम जान पड़ता है।

पद्मावती[7]—विन्ध्य पर्वत मालाओं के मध्य भाग में यह अरण्य स्थित था। इस अरण्य में पहाड़ी नदियों के रूप में नून तथा महावार नदियाँ प्रवाहित होती थी।

प्रेतवन[8]—समराइच्च कहा में उल्लिखित इस अरण्य का नाम काल्पनिक सा लगता है।

विन्ध्याटवी[9]—विन्ध्य पर्वत के पास घने एवं विभिन्न प्रकार के वृक्षों से

१. सम० क० ६, पृ० ५१०, ५१५, ५२०, ५३६।
२. बी० सी० ला—सम जैन कैनानिकल सूत्र, पृ० १७७।
३. सम० क० ५, पृ० ४४५; ६, ५४५।
४. वही ५, पृ० ४४५ (मलय सानु)।
५. वही ७, पृ० ६५६।
६. वही ५, पृ० ४१२; ७, ६८०।
७. वही क० ४, पृ० २८५।
८. वही क० ५, पृ० ४०१।
९. वही ८, पृ० ७९९, ८२१।

आच्छादित अटवी को विन्ध्यारण्य कहा गया है। आदि पुराण में इस विन्ध्याचल वन का उल्लेख है।[1] महावंश मे बताया गया है कि अशोक नगर से निकल कर स्थल मार्ग द्वारा विन्ध्याटवी को पार कर एक सप्ताह में ताम्रलिप्ति पहुँचा जा सकता है।[2] महाभारत में भी विन्ध्याचल वन का उल्लेख मिलता है।[3]

सुंसुमार[4]—विजयार्ध की उत्तर श्रेणी के नगरों मे विजयपुर नामक नगर के पास ही सुंसुमार अरण्य स्थित था। सुंसुमार गिरि की पहचान वर्तमान मिर्जापुर जिले मे चुनार की पहाड़ियों से की गई है।[5] सुंसुमार अरण्य मे ही सुंसुमार पर्वत की स्थिति बतायी गयी है अतः सिद्ध होता है कि यह अरण्य भी मिर्जापुर मे चुनार के पास स्थित रहा होगा।

पर्वत

प्रत्येक देश अथवा राष्ट्र की सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के साथ साथ वहां की जलवायु, ऋतु परिवर्तन तथा सुरक्षा की दृष्टि से पर्वतों का अत्यधिक महत्व रहता है। भारत की उत्तरी तथा दक्षिणी सीमाओं पर फैली शैल श्रृङ्खलाओं के साथ अन्य पर्वत मालाओं से इस देश के सांस्कृतिक स्वरूप के निर्माण मे प्राचीन काल से ही बराबर योगदान मिलता रहा है। समराइच्च कहा में निम्नलिखित पर्वतों का उल्लेख है।

उदयगिरि[6]—समराइच्च कहा मे इसकी स्थिति नहीं बताई गयी है। मात्र वर्णन मे नाम ज्ञात होता है। भुवनेश्वर स्टेशन से लगभग चार मील दूरी पर उदयगिरि और खंडगिरि नामक दो प्राचीन पहाड़ियाँ है जिन्हे काटकर सुन्दर गुफाएं बनाई गई है।[7] ये दोनों पहाड़िया खारवेल के हाथी गुम्फा शिलालेख के लेखक को कुमार और कुमारी पहाड़ियों के रूप मे ज्ञात थीं।[8] खंडगिरि पहाड़ी पुरी जिला मे भुवनेश्वर से ३ मील उत्तर-पश्चिम की तरफ स्थित है।[9] इस

---

१. आदि पुराण ३०।९२।

२. महावंश १९, ६—हिन्दी संस्करण, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

३. महाभारत—आदि पर्व २०८।७; सभा पर्व १०।३१; वन पर्व १०४।६; विराटपर्व ६।१७।

४. सम० क० २, पृ० १०७ (विजये सुंसुमार रण्णे सुंसुमार गिरिम्मि)।

५. घोष—अर्ली हिस्ट्री आफ कौशाम्बी, पृ० ३२।

६. सम० क० २, पृ० १३६।

७. जगदीश चन्द्र जैन—जैनागम साहित्य मे भारतीय समाज, पृ० ४६७।

८. वी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ एंसियन्ट इंडिया, पृ० १९४।

९. वही पृ० १९४।

पहाड़ी की तीन चोटियाँ हैं—उदयगिरि, नीलगिरि और खण्डगिरि। खण्डगिरि की चोटी १२३ फीट ऊँची है जब कि उदयगिरि की चोटी ११० फीट ऊँची है। यहाँ इस पर्वत श्रेणी (उदयगिरि) के नीचे एक वैष्णव कुटी है तथा इसमें ४० गुफाएँ हैं।[१]

गान्धार पर्वत[२]—यह गांधार देश के अन्तर्गत एक प्रसिद्ध पहाड़ी के नाम से विख्यात था। अन्यत्र इसकी स्थिति का पता नहीं चलता है।

वैताढ्य पर्वत[३]—यह पर्वत छः खण्डों के मध्य में होने के कारण विजयार्ध के नाम से जाना जाता है। वैताढ्य पर्वत की दो श्रेणियाँ हैं (उत्तर श्रेणी और दक्षिण श्रेणी)। इन श्रेणियों में विद्याधर नगर विद्यमान थे। नेमिचन्द्र शास्त्री ने गंध समृद्ध नगर की स्थिति मालवा[४] में बतायी है जो समराइच्च कहा में वैताढ्य के पास स्थित बताया गया है। अतः यह पर्वत भी मालवा में ही होना चाहिए।

मलय पर्वत[५]—समराइच्च कहा में उल्लिखित इस पर्वत का नाम भागवत पुराण तथा मत्स्य पुराण में भी आया है।[६] बी० सी० ला के अनुसार कावेरी के नीचे पश्चिमी घाट का फैला हुआ दक्षिणी भाग ही मलयगिरि का पश्चिमी भाग है जिसे वर्तमान ट्रावनकोर पहाड़ी के नाम से जाना जाता है।[७] डी० सी० सरकार ने भी इसकी पहचान ट्रावनकोर की पहाड़ियों से की है।[८] चंदन की बहुल मात्रा में प्राप्ति के कारण ही इसे मलय पर्वत (मलयगिरि) कहा गया है।

मन्दरगिरि[९]—इसे मंदर गिरि अथवा मंदराचल के नाम से जाना जाता

---

१. बी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ एंसियन्ट इण्डिया, पृ० १९४।
२. सम० क०, १, पृ० ४९।
३. वही ५, पृ० ४११, ४५५, ४६०, ४६२, ४६३; ६, पृ० ५००, ५८१-८२, ५९४, ५९५; ८, पृ० ७३६।
४. नेमिचन्द्र शास्त्री—हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ० ३५६।
५. सम० क० ५, पृ० ४३८, ४४१-४२-४३-४४-४५, ४४९, ४५५, ८, पृ० ८२१, ८४६।
६. भागवत पुराण ५।१९।१६; ११८।३२; ६।३।३५; १२।८।१६; मत्स्य पुराण ६१।३७, ११४२; देखिए—रघुवंश ४।४६।
७. बी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ एंसियन्ट इंडिया, पृ० २०६।
८. ज्योग्राफिकल डिक्शनरी आफ ऐंसियन्ट एण्ड मेडिवल इंडिया, पृ० ७१।
९. सम० क० ३, पृ० १९८; ४, पृ० २९६।

था। पुराणों में भी इस पर्वत का उल्लेख है।[1] बी० सी० ला के अनुसार यह भागलपुर जिला के बंका नामक तहसील में स्थित है जो भागलपुर के ३० मील दक्षिण तथा बौंसी के ३ मील उत्तर दिशा में वर्तमान है।[2] यहाँ भगवान् बुद्ध की प्रतिमा तथा बौद्ध मंदिर के अवशेष मिले हैं।[3]

मेरु पर्वत[4]—इसकी स्थिति जम्बू द्वीप के मध्य में बतायी गयी है।[5] मार्कण्डेय पुराण से पता चलता है कि इस पर्वत के पश्चिम में निषाध और परिपात्र, दक्षिण में कैलाश और हेमवत तथा उत्तर दिशा में शृंगवन एवं जरुधि स्थित हैं।[6] इसे सिनेरु की सबसे ऊँची चोटी मानी जा सकती है जो ७, ८०० मील ऊँची है।[7] यह बदरिकाश्रम के करीब है तथा संभवतः एरियन का मेराम पर्वत है।[8] इसे गढ़वाल में स्थित रुद्र हिमालय माना जा सकता है, जहाँ से गंगा निकलती है।[9] मेरु पर्वत की यही स्थिति सही जान पड़ती है।

रत्नगिरि[10]—समराइच्च कहा में उल्लिखित यह पर्वत गोपालपुर से चार मील उत्तर-पूर्व तथा विरूपा की एक शाखा केलुआ नामक एक छोटे से स्रोत के किनारे स्थित है।[11] भरत सिंह उपाध्याय ने इसकी स्थिति प्राचीन राजगृह के पास बतायी है।[12] कनिंघम ने तो प्राचीन बुद्धकालीन पाण्डव पर्वत को ही रत्नगिरि से मिलाया है।[13] यह पाण्डव पर्वत भी राजगृह के पास स्थित था। उपरोक्त साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि यह पर्वत प्राचीन राजगृह के पास ही स्थित रहा होगा।

१. कालिका पुराण, अध्याय १३, २३; भागवत पुराण ८, २३-२८।
२. बी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ ऐंसियन्ट इंडिया, पृ० २७९।
३. बर्न—भागलपुर, बिहार डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, पृ० १६२-६३।
४. सम० क० ५, पृ० ४७०।
५. कूर्म पुराण, पृ० ४७८, श्लोक १८।
६. मार्कण्डेय पुराण, बंगवासी एडीशन, पृ० २८०।
७. धम्मपद १, १०७; जातक १, २०३।
८. बी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ ऐंसियन्ट इंडिया, पृ० १३१।
९. बी० सी० ला—ज्योग्राफी आफ अर्ली बुद्धिज्म, पृ० ४२।
१०. सम० क० ६, पृ० ५८५; ७, पृ० ६४८।
११. बी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ ऐंसिएन्ट इंडिया, पृ० २२०।
१२. भरत सिंह उपाध्याय—बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ० १८२।
१३. कनिंघम—ऐंसियन्ट ज्योग्राफी आफ इंडिया, पृ० ५३१।

लक्ष्मी पर्वत[1]—इसकी स्थिति आसाम के दक्षिण में थी जो लक्ष्मी निलय के नाम से प्रख्यात था। अतः आसाम के अन्तर्गत स्थित एक पहाड़ी क्षेत्र में इसकी पहचान की जा सकती है।

विन्ध्य पर्वत[2]—आदि पुराण में इसे विन्ध्याचल कहा गया है जिसके पश्चिमी छोर को पार कर भरत चक्रवर्ती ने लाट तथा सोरठ देश पर आक्रमण किया था।[3] प्राचीनकाल में यह पर्वत माला मध्यभारत के उत्तर-पश्चिम में विस्तृत था। पद्म पुराण तथा कालिदास के मेघदूत में भी इस पर्वत का उल्लेख आया है।[4] दशकुमार चरित में पता चलता है कि विन्ध्य पर्वत में मिला हुआ विन्ध्यारण्य भी था जहाँ घनी एवं भयंकर जंगली झाड़ियाँ एवं वृक्ष थे जिसमें जंगली जानवरों के रहने की सुविधा थी।[5] ऋक्ष, विन्ध्या और परिपत्र आदि सम्पूर्ण पर्वत श्रेणियों के भाग थे जिसे आधुनिक विन्ध्या कहते हैं।[6] आधुनिक भौगोलिक वेत्ताओं के अनुसार विन्ध्य पर्वत गुजरात में पश्चिम तथा बिहार के पूर्वी भाग में ७०० मील के विस्तृत क्षेत्र में है जिसे भरनेर तथा कैमूर आदि विभिन्न स्थानीय नामों से जाना जाता है।[7] यह टालेमी का ओइन्डीओन है जो नर्मदा और ताप्ती नदियों का उद्गम स्रोत है।[8] प्राचीन काल में यह पर्वत औषधियों आदि का केन्द्र था।[9]

शिलोन्ध्र पर्वत[10]—वर्णन के आधार पर अनुमान लगाया जाता है कि संभवतः यह पहाड़ी आसाम के दक्षिण में अवस्थित थी। इस पहाड़ी में लगा घने वृक्षों से आच्छादित एक जंगल था जिसमें सिंह, अजगर जैसे भयंकर जानवर निवास करते थे।

१. सम० क० २, पृ० १२५; ३, पृ० १६०, १७२।
२. वही २, पृ० १२७; ६, पृ० ५०१; ७, पृ० ६७१; ८, पृ० ७९८-७९९, ८०१।
३. आदि पुराण २९।८८।
४. पद्म पुराण—उत्तर काण्ड, श्लोक ३५-३८; मेघदूत-पूर्वमेघ, १९।
५. दशकुमार चरित, पृ० १८।
६. ला—ज्योग्राफिकल एसेज, १०७।
७. बी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ ऐंसियन्ट इंडिया, पृ० ३५५।
८. टालेमीज ऐंसियन्ट इण्डिया, पृ० ७७।
९. सम० क० ८ पृ० ८०१।
१०. वही २, पृ० १२५; ४, पृ० ३०७, ६, पृ० ५१६।

सुवेल[1] पर्वत—समराइच्च कहा में उल्लिखित इस पर्वत की स्थिति का ठीक-ठीक पता नहीं चलता है और न अन्यत्र इसका उल्लेख ही मिलता है।

संसुमार गिरि[2]--विजयार्ध की उत्तर श्रेणी के नगरों में विजयपुर एक नगर है। इस नगर के पास संसुमार नामक एक अरण्य था और इसी अरण्य मे सुंसुमार नामक पर्वत विद्यमान था। वत्स जनपद के राजा उदायन के पुत्र राजकुमार बोधि इसी पर्वत पर रहते थे, जहां कोकनद नामक महल बनवाया था।[3] बौद्ध परम्परा के अनुसार यहां भर्ग राज्य की राजधानी थी और यह एक किले के रूप में प्रयुक्त होता था।[4] कुछ विद्वानों ने इसे आधुनिक चनार की पहाड़ियां बताया है जो मिर्जापुर जिले में स्थित है।[5]

हिमवत (हिमालय)[6]—यह जम्बू द्वीप का प्रसिद्ध पर्वत आधुनिक हिमालय है जो भारत के उत्तर मे स्थित है। हिम (वर्फ) से सदा आच्छादित रहने के कारण ही इसे हिमवत अथवा हिमालय कहा जाता है। इस पर्वत का उल्लेख अन्य जैन,[7] बौद्ध,[8] ब्राह्मण ग्रन्थों[9] तथा विदेशी विवरण[10] मे मिलता है। भारत के उत्तर दिशा मे पूर्व से लेकर पश्चिमी समुद्र तट तक धनुष की डोरी की भाँति फैला हुआ हिमालय पर्वत ही प्राचीन हिमवत है। इसे पर्वतराज तथा नगाधिराज कहा गया है। जैन परम्परा के अनुसार यह जम्बूद्वीप का प्रथम कुलाचल है जिसपर ११ कूट हैं। इसका विस्तार १०५२ १२/१९ योजन है, तथा इसकी ऊंचाई १०० योजन तथा गहराई २५ योजन बतलाई गयी है। हिमालय तीन भागों मे विभक्त है—उत्तर, मध्य और दक्षिण। उत्तर माला के बीच

---

१ सम० क० ८, पृ० ३१० ।

२ वही २, पृ० १०७ (विजये सुंसुमारे रण्णे सुंसुमार गिरिम्मि), १०८।

३ बी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ एंसियन्ट इंडिया, पृ० १५२।

४ मज्झिम निकाय, १, ३३२-८; २, ९१-९७।

५ घोष—अर्ली हिस्ट्री आफ कौशाम्बी, पृ० ३२; तथा भरत सिंह उपाध्याय—बुद्ध कालीन भारतीय भूगोल, पृ० ३३६।

६ सम० क० ६, पृ० ५०२ (हिमवन्त पव्वय गयस्स दरिह रूगयं)।

७. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, १, ९; आदिपुराण २९।६४।

८. मलालसेकर—डिक्शनरी आफ पाली प्रापर नेम्स, १, १३२५।

९. ऋग्वेद १०।१२१।४; अथर्ववेद १२।१।२; मारकण्डेय पुराण, ५४, २४, ५७, ५९।

१०. टालेमीज़ एंसियन्ट इंडिया, पृ० १९।

कैलाश पर्वत है।[१] मध्य माला नंग पर्वत से प्रारम्भ होती है जिसकी सबसे ऊँची चोटी २६, ६२९ फुट है। मध्य माला का दूसरा अंश नेपाल, सिक्किम और भूटान राज्य के अन्तर्गत है जहाँ सर्वदा तुषार पड़ती रहती है।

नदियाँ

समराइच्च कहा में निम्नलिखित नदियों के उल्लेख प्राप्त होते हैं।

गंगा[२]—समराइच्च कहा के कथा प्रसंग में इसका उल्लेख आया है। गंगा नदी का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद के नदी स्तुति में मिलता है।[३] इसका उल्लेख विभिन्न ग्रन्थों में विभिन्न नामों से हुआ है। महाभारत तथा भागवत पुराण में इसे अलखनन्दा,[४] भागवत पुराण में एक अन्य स्थान पर द्युनदी,[५] रघुवंश में भागीरथी तथा जाह्नवी[६] के रूप में वर्णित किया गया है। तैत्तिरीय आरण्यक के अनुसार गंगा-जमुना के बीच रहने वाले लोग सम्माननीय समझे जाते थे।[७] पद्म पुराण के अनुसार गंगा नदी की सात शाखाएँ थीं, यथा—वितोदका, नलिनी, सरस्वती, जम्बू नदी, सीता, गंगा और सिन्धु।[८] भागीरथी गंगा हिमालय से निकल कर गंगोत्री नामक स्थान से गिरती है। तत्पश्चात् हरद्वार से होते हुए उसके नीचे बुलन्द शहर से दक्षिण की तरफ मुड़ती है जहां यह दक्षिण पूर्व की ओर बहती हुई इलाहाबाद में यमुना नदी में मिलती है। इलाहाबाद से राज-महल तक यह पूर्व दिशा की ओर बहती है और राजमहल से पश्चिम बंगाल में प्रवेश कर बंगाल की खाड़ी में गिरती है।[९] प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक के भारतीय जीवन के आर्थिक, राजनैतिक एवं संस्कृति के केन्द्र हरद्वार, कानपुर, प्रयाग, वाराणसी तथा पटना आदि नगर गंगा के ही तट पर स्थित हैं।

१. नेमिचन्द्र शास्त्री—आदि पुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० १११।
२. सम० क० २, पृ० १५६; ३ पृ० १९८; ४, पृ० २३४।
३. ऋग्वेद १०।७५।५।
४. महाभारत—आदि पर्व, १७०, २२; भागवत पुराण ८, ६, २४; ११, २९, ४२।
५. भागवत पुराण ३, ५, १; १०, ७५, ८।
६. रघुवंश ७।३६; ८।९५; १०।२६।
७. तैत्तिरीय आरण्यक २।२०।
८. पद्मपुराण, स्वर्ग काण्ड, अध्याय २, श्लोक ६८।
९. यन० एल० डे०—ज्योग्राफिकल डिक्शनरी, पृ० ७९; देखिए—बी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ एंसियन्ट इंडिया, पृ० ८९।

सिन्धु[१]—इसका उल्लेख बृहत् संहिता तथा अष्टाध्यायी में भी हुआ है।[२] फाहियान के विवरण में इसे सिंतु कहा गया है।[३] यह हिमालय की ढाल से बहती हुई उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश से होकर पंजाब, सिन्ध तथा अंत में पश्चिमी हिंद महासागर में जाकर मिलती है।[४] प्राचीन ग्रीक विवरण के अनुसार सिन्धु की सात सहायक नदियाँ थीं, यथा—हाईड्रोट्स (रावी), अकेसिन (चेनाब), हाइयेसिस (विपासा-ब्यास), हाइडास्पस (वितास्त-झेलम), कोफीन (काबुल), पेरेनास, सपेरवास और सियानो।[५] चन्द्र का मेहरौलीस्तम्भ लेख भी सिन्धु के सात मुहाने का वर्णन करता है।[६]

शिप्रा[७]—यह नदी मालवा के पठार से निकल कर उज्जयिनी होती हुई चम्बल में गिरती है। इसका दूसरा नाम विशाला भी है।[८] कालिदास के अनुसार यह एक ऐतिहासिक नदी है जिसके तट पर उज्जयिनी नामक प्रसिद्ध नगर बसा था।[९] बी० सी० ला के अनुसार यह ग्वालियर राज्य की एक स्थानीय नदी है जो चम्बल (चर्मन्वती) में जाकर गिरती है।[१०] स्कन्द पुराण में शिप्रा और साता नामक दो नदियों के संगम को सातासंगम कहा गया है जो तीर्थ यात्रियों के लिए एक महत्वपूर्ण स्थान था।[११] जैन ग्रन्थ आवश्यक चूर्णी में भी इसका उल्लेख मिलता है।[१२]

ऋजुबालुका[१३]—इस नदी की स्थिति का ठीक-ठीक पता नहीं चलता है। संभवतः यह विन्ध्यागिरि से निकलने वाली झरने की भाँति कोई छोटी नदी रही होगी।

१. समo कo २, पृ० १८८।
२. बृहद् संहिता १४, १९; अष्टाध्यायी-४।३।३२-३३; ४।३।९४।
३. लेग (Legge)—फाहियान, पृ० २६।
४. बी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ ऐंसियन्ट इंडिया, पृ० १२७।
५. जे० सी० सिकदार—स्टडीज इन भगवती सूत्र, पृ० ५५१-५२।
६. चन्द्र का मेहरौली स्तम्भ—'तीर्त्वा सप्तमुखानि·······सिन्धोः' देखिए—डी० सी० सरकार-सेलेक्ट इन्सक्रिप्सन्स, पृ० २७५।
७. समo कo ४, पृ० ३१८-१९।
८. मेघदूत—पूर्वमेघ २७-२९।
९. रघुवंश—६।३५; मेघदूत-पूर्व मेघ २७, २९, ३१।
१०. बी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ ऐंसियन्ट इंडिया, पृ० ३८७-८८।
११. स्कन्द पुराण, अध्याय ५६।
१२. आवश्यक चूर्णी, पृ० ५४४।
१३. समoकo ६, पृ० ५४४; देखिए—जैन धर्म का मौलिक इतिहास, पृ० ३९७-३९९।

तृतीय-अध्याय

शासन-व्यवस्था

राजा

राजतंत्र का अस्तित्व वैदिक साहित्य में ही ज्ञात होता है। वैदिककाल में बहुत से परिवार (कुल) मिलकर एक विस (एक सामाजिक संगठन) और बहुत से विस मिलकर एक जन का निर्माण करते थे। कुल का अधिपति कुलपति कहा जाता था। इस प्रकार एक कुलपति अपने गुण, शौर्य और नेतृत्व की क्षमता के कारण विसपति[1] और विसपति से जनपति बन सकता था।[2] धीरे-धीरे कई जनपद मिलकर महाजनपद और फिर राज्य बने। राज्य का अधिपति राजा कहा जाने लगा। कौटिल्य ने प्रजापालन के लिए राजा का होना आवश्यक बताया है।[3]

प्राचीन काल में राज्य मुख्यतः दो प्रकार के थे, राजतंत्र और गणतंत्र। गुप्तकाल तक आते-आते प्रायः गणराज्य समाप्त हो चुके थे और राजतंत्र का ही प्रचार प्रसार एवं प्रभाव बढ़ता रहा। राजतंत्रात्मक शासन पद्धति में राजा ही सर्वेसर्वा होता था। वही राजतंत्र, सेना, प्रशासन और न्याय पालिका का प्रधान होता था।[4]

समराइच्चकहा में भी राजतंत्रात्मक शासन का उल्लेख है।[5] यद्यपि राजा स्वेच्छाचारी होते थे तथा उनका पद भी वंश परम्परागत होता था फिर भी वे प्रजा के हितैषी एवं शुभचिन्तक होते थे।[6] दुष्ट एवं अत्याचारी राजाओं की निंदा की जाती तथा उनके विरुद्ध विद्रोह भी होते थे।[7]

1. मैकक्रिंडिल-एंसियन्ट इंडिया पृ० ३८।
2. ए० एस० अल्तेकर—स्टेट एण्ड गवर्नमेंट इन एंसियन्ट इंडिया, पृ० ७६।
3. अर्थशास्त्र, १,१३, (तस्मात् स्वधर्मं भूतानां राजा नव्यभिचारयेत्)।
4. जी० सी० चौधरी-पोलिटिकल हिस्ट्री आफ नार्दन इंडिया फ्राम जैन सोर्सेज, पृ० ३३३।
5. सम० क० ४, पृ० २६२; ९, पृ० ८६०-६१, ९५४।
6. वही २, पृ० ११३, ११७; ४, पृ० ३४२, ३६१; ५, पृ० ४८५-८६; ७ पृ० ७०९; ८, पृ० ८४५।
7. वही ५, प० ४८२।

राजा के गुण

प्राचीन काल में राज्य के अन्दर शान्ति एवं व्यवस्था बनाए रखने के लिए तथा बाह्य आक्रमणों से रक्षा के लिए राजा की आवश्यकता मानी जाती थी। राजपद अत्यधिक गौरव, महत्व तथा जिम्मेदारियों से युक्त था। परिणामतः राजा साधारण व्यक्तियों से भिन्न होता था। समराइच्च कहा में आया है कि राजा को सुकृत (सत् कर्म करने वाला) तथा धर्म-अधर्म की व्यवस्था रखने में संलग्न रहना चाहिए, साथ-साथ उसे प्रजा पालन, सामंत मण्डल को वश में रखने वाला, दीन-अनाथों का उपकार करने वाला तथा कीर्तिवान होना चाहिए।[1] इसी ग्रन्थ में उल्लिखित है कि राजा को शरणागतवत्सल तथा धर्मार्थ साधनों में रत होना चाहिए।[2] निशीथ भाष्य में बताया गया है कि राजा को सतकर्मों का पक्षपाती होना चाहिए न कि बुरे कर्मों का; साथ-साथ यदि वह धन संचय का प्रयत्न नहीं करता तो शीघ्र नष्ट हो जाता है।[3] व्यवहार भाष्य से पता चलता है कि राजा को प्रजा से दशवां भाग कर के रूप में लेना चाहिए; लोकाचार, वेद और राजनीति में कुशल तथा धर्म में श्रद्धावान होना चाहिए।[4]

आदि पुराण में उल्लिखित है कि राजा को अपने आंतरिक शत्रुओं (काम, क्रोध, मद, मत्सर, लोभ, मोह आदि) को जीतकर बाह्य शत्रुओं को भी अपने अधीन करना चाहिए; धर्म, अर्थ और काम का सेवन करना चाहिए; राजसत्ता के मद में न आकर विवेक द्वारा यथार्थ न्याय का पालन करना चाहिए; युवावस्था, रूप, ऐश्वर्य, कुल, जाति आदि गुणों को प्राप्त कर अहंकार नहीं करना चाहिए तथा अन्याय, अत्यधिक विषय सेवन एवं अज्ञान इन तीनों दुर्गुणों से बचना चाहिए।[5] सोमदेव ने यशस्तिलक में राजा को सद्गुणों का अनुगामी बताते हुए कहा है कि प्रजा को भी राजा का ही अनुकरण करना चाहिए।[6]

अर्थशास्त्र में राजा के गुणों का वर्णन करते हुए बताया गया है कि उसे अभिगामिक गुण (अक्षुद्र परिवारत्व, वश्य सामन्तता, शुचित्व, प्रिय वादिता, धार्मिकता तथा दूर दर्शिता आदि) प्रज्ञा गुण, उत्साह गुण तथा आत्मसंयत गुण (वाकचातुर्य, स्मरण शक्ति वाला, धीर, वीर, दूरदर्शी, कोष संवर्धन की क्षमता

१. सम० क० २, पृ० १८२; ८, पृ० ७३१-३२ ।
२. वही २, पृ० ८५१ ।
३. निशीथ भाष्य १५, ४७२९; देखिए—आदि० ४।१६३ ।
४. व्यवहार भाष्य १, पृ० १२८ अ ।
५. आदि० ४।१६४-६५-६६-६७-६८-६९ ।
६. यशस्तिलक ४।९५ ।

वाला गंभीर तथा उदार) आदि से युक्त होना चाहिए।[1] याज्ञवल्क्य स्मृति में भी राजा को उत्साही, स्थूल लक्ष्य, कृतज्ञ, वृद्धसेवी, विनययुक्त, कुलीन, सत्यवादी, पवित्र, अदीर्घसूत्री, स्मृतिवान, प्रियवादी, धार्मिक, अव्यसनी, पंडित, बहादुर, रहस्यवेत्ता, राज्य प्रबन्धक, आत्म विद्या और राजनीति में प्रवीण बताया गया है।[2]

इन सब अन्य साक्ष्यों में राजा के गुणों का वर्णन किया गया है जिनसे समराइच्च कहा में प्राप्त सामग्रियों की पुष्टि होती है। समराइच्च कहा तथा अन्य साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि राजा सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि सभी क्षेत्रों मे सर्व गुण सम्पन्न होता था तथा वह सदैव प्रजा-हित का ध्यान रखता था। वह अपने सुख की कामना न करके प्रजा के कल्याण (दीन, अनाथ आदि की सहायता तथा रक्षा) तथा राज्य हित की कामना करता था। किन्तु जो राजा इन सभी गुणों के विरुद्ध आचरण करके स्वेच्छाचारी हो जाते थे, उनके विरुद्ध सर्वत्र विद्रोह होते थे तथा उनकी भर्त्सना होती थी। फलतः उनका राज्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता था।

राजा-महत्त्व

प्राचीन काल में राजाओं का अत्यधिक महत्त्व था। समराइच्च कहा में उसे नरपति[3] कहा गया है। कन्नौज के राजा जयचन्द के अभिलेख (संवत् १२२५) में भी राजा के लिए 'नरपति' शब्द का उल्लेख किया गया है।[4] वे मान और विक्रम के धनी होते थे।[5] राजा-महाराजा अंतःपुर, अमात्य, महासामन्त, सामन्त और नगरवासियों से घिरे रहते थे,[6] तथा उनके द्वारा सम्मानित होते थे। उनकी सेवा के लिए प्रतिहारी[7] तथा सुरक्षा के लिए अंगरक्षक[8] नियुक्त

---

१. अर्थशास्त्र ६. १।
२. याज्ञवल्क्य स्मृति, राजधर्म प्रकरण, श्लोक ३०९-३१०।
३. सम० क० ४, पृ० ३४५, ३५८; ५, पृ० ४४१, ४३४; ७, पृ० ६४७, ६६०, ६९३।
४. इंडि० एंटी० १५, पृ० ६।
५. सम० क० ७, पृ० ६०५।
६. वही ६, पृ० ५६४।
७. वही ५, पृ० ४८१, ४८२; ७, ६९१, ६९५, ७०५; देखिए—वासुदेवशरण अग्रवाल—हर्ष चरित एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० ४४।
८. वही ५, पृ० ३६७; ८, ७७५; ९, ९०६।

रहते थे । राजाज्ञा का पालन सर्वत्र होता था ।[१] राजा धर्मार्थ तथा काम आदि त्रिवर्ग संपादन में रत रहते हुए[२] प्रजा के हित का भी संपादन करता था ।[३]

आदि पुराण से पता चलता है कि राजा को न्यायपूर्वक आजीविका चलाने वाले शिष्ट पुरुषों का पालन और अपराध करने वाले दुष्ट पुरुषों का निग्रह करना चाहिए ।[४] प्रजाहित के लिए उसे अधिक से अधिक काम करना अभिहित है ।[५] समराइच्च कहा में उल्लिखित राजा के पद को गरिमा तथा महत्व उसकी कार्यक्षमता पर आधारित है । राजा का पद अत्यधिक जिम्मेदारियों से परिपूर्ण होता था और जो राजा इस जिम्मेदारी का पालन अपने परिश्रम, कार्य-कुशलता आदि के अनुसार करता था उसका सर्वत्र सम्मान तथा महत्व था । प्रजा सम्मान के साथ उसकी आज्ञा का पालन करती थी । ऐसे नृपति का सम्मान सामन्त, महासामन्त, मंत्री, पुरोहित, नगरवासी तथा सम्पूर्ण अन्य अधिकारी भी करते थे । इन्हीं सब कारणों से राजा को अन्य व्यक्तियों से भिन्न बताकर उसे श्रेष्ठ तथा महत्वपूर्ण व्यक्ति समझा जाता था ।

युवराज

प्रशासन को सुव्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए राज्य में युवराज, मंत्री, पुरोहित, सेनाध्यक्ष आदि का होना आवश्यक समझा जाता था ।

अभिषेक होने के पूर्व की अवस्था को यौवराज कहा गया है ।[६] युवराज पद राजकुमार अथवा राजघराने के विश्वसनीय व्यक्ति को ही सौंपा जाता था ।[७] वह प्रान्तीय प्रशासन का कार्यभार वहन करता था ।[८] युवराज को ही बाद में अभिषिक्त करके राज्य की सत्ता भी सौंप दी जाती थी ।[९]

---

१. सम० क० ४, पृ० २६२; ५, ३०४; ६, ५२४, ५६५; ९, पृ० ८६०-६१, ९५४ ।

२. वही १, पृ० १५; २, पृ० ७६; ९, ८८१ ।

३. वही २, पृ० ११३, ११७; ४, ३४२, ३६१; ५, ४८५-८६; ७, ७०९; ८, ८६५ ।

४. आदिपुराण ४२।२०२ ।

५. वही ४२।१३७-१९८ ।

६. निशीथ चूर्णी ११, ३३६३ की चूर्णी (दोच्चं युवरायाणांणाभिसिंचति ताव युवरज्जं भण्णति) ।

७. सम० क० २, पृ० १४७; ५, पृ० ४८१, ४८५; ६, ५६९; ७, ६०७, ६२९, ६९५ ।

८. वही ६, पृ० ५६९ ।

९. वही ५, पृ० ४८५ ।

मौर्य सम्राट अशोक ने राजकुमार कुणाल और बाद में कुमार सम्प्रति को युवराज के रूप में उज्जयिनी का शासन प्रबन्ध सौंपा था जिसे कुमारा भुक्ति कहा गया है।[1] व्यवहार भाष्य से पता चलता है कि कुछ राजा अपने जीवन काल में ही अपने पुत्र को युवराज पद देते थे जिससे राज्य गृहयुद्ध की विभीषिका से बच जाता था, जिन्हें हम सापेक्ष राजा कह सकते हैं, किन्तु कुछ राजा ऐसे भी थे जिनकी मृत्यु के पश्चात् ही उसके पुत्र को राजा बनाया जाता था, जिन्हें हम निरपेक्ष राजा कह सकते है।[2]

कभी कभी एक से अधिक राजपुत्रों के होने पर राजा द्वारा उनकी परीक्षा ली जाती थी और जो परीक्षा में सफल होता उसे युवराज बना दिया जाता था।[3] किन्तु समराइच्च कहा में ऐसे उल्लेख नहीं मिलते। यहां राजकुमार को विविध कलाओं और विद्याओं से युक्त बनाया गया है।[4] राजकुमार के लिए लेख, गणित, आलेख्य, नाट्य, गीत, वाद्य, स्वरगत, पुष्करगत, समताल, द्यूत, जनवाद होरा, काव्य, दकमात्तिकम (भूमि उपज संबंधी विषय), अट्ठावय (अर्थ संबंधी-ज्ञान), अन्नविधि, पान विधि, शयन विधि, आर्या, प्रहेलिका, मागधिका, गाथा, गीति, श्लोक, मधुसिक्थ, गंधयुक्ति, आभरण विधि, तरुण प्रीति कर्म, स्त्री लक्षण, पुरुष लक्षण, हय लक्षण, गज लक्षण, गो लक्षण, मेष लक्षण, मणि लक्षण, चक्र लक्षण, छत्र लक्षण, दण्ड लक्षण असि लक्षण, काकिनी लक्षण (सिक्कों की जानकारी), चर्म लक्षण, चन्द्र चरित, सूर्य चरित, राहु चरित, ग्रह चरित, सुचाकार (आकार मात्र से रहस्य जानने की कला), विद्यागत, मंत्रगत, रहस्यगत, संभव (सभवन प्रसूति विज्ञान), चार (तेज गमन करने की कला), प्रतिचार (उपचार); व्यूह, प्रतिव्यूह, स्कन्धावारमान (शिविर ज्ञान), नगरमान, वास्तुमान (वास्तु कला), स्कन्धावारनिवेशन (छावनियों का रचनात्मक ज्ञान), नगरनिवेशन, वास्तु निवेश, इष्वस्त्र (बाणविद्या) तत्त्वप्रवाद (तत्त्व ज्ञान), अश्वशिक्षा, हस्ति शिक्षा, मणि शिक्षा, धनुर्वेद, हिरण्यवाद, सुवर्णवाद, मणिवाद, धातुवाद, बाहु युद्ध, दण्ड युद्ध, मुष्टि युद्ध, अस्थि युद्ध, युद्ध, नियुद्ध (कुश्ती लड़ने की कला), युद्ध-नियुक्त (घमासान युद्ध की कला), सूत्र क्रीड़ा, वस्त्र क्रीड़ा, वाद्य क्रीड़ा, नलिका क्रीड़ा, पत्रच्छेद्य, कटकछेद्य (सैन्य भेदक), पतरच्छेद्य, सजीव, निर्जीव, शकुनरुत

१. निशीथ चूर्णी २, पृ० २६१-६२।

२. व्यवहार भाष्य २,२७।

३. वही ४,२०९; ४,२६७।

४. सम० क० ९, पृ० ८६३ (सयल सत्यकला संपत्ति सुंदरं पत्तो कुमारभाव)।

आदि कला और विद्या का उल्लेख है।[१] इन कलाओं का विशेष विवरण अध्याय पांच मे दिया गया है। कलिंगराज खारवेल के अभिलेख में युवराज के योग्य लेख—रूप गणना—व्यवहार विधि आदि सम्पूर्ण विद्याओं को प्राप्त होने के बाद खारवेलको युवराज बनाये जाने का उल्लेख है।[2]

सम्पूर्ण कलाओं और विद्याओं से युक्त राजकुमार को युवराज और तत्पश्चात (राजा की इच्छा पर) अभिषेक संस्कार के पश्चात् सम्पूर्ण राजसत्ता सौप दी जाती थी। यद्यपि बड़ा राजपुत्र राजसत्ता का अधिकारी होता था फिर भी खुशी एवं महत्व के अवसर पर राजा द्वारा अन्य राज पुत्रों को पारितोषिक स्वरूप ग्राम, आकर, मडम्ब आदि वितरित किये जाते थे।[3] सभवतः अन्य राजपुत्रों को संतुष्ट करने के लिए ऐसा किया जाता था जिससे राज्य में विद्रोह आदि की सम्भावना न रह जाय।

उत्तराधिकारी और राज्याभिषेक

प्राचीनकाल में अधिकतर राजपद वंश परम्परा से ही प्राप्त होता था। राजा-महाराजा अपने जीवन के अन्तिम आश्रम में राज पद अपने अपने बड़े पुत्र को सौंप देते थे। समराइच्च कहा में राजा प्रव्रज्या ग्रहण कर श्रमण धर्म का पालन करने के उद्देश्य से अपने बड़े पुत्र को अभिषिक्त कर राज सत्ता सौंप देते थे।[४] जहाँ बड़े पुत्र को अभिषिक्त कर राजसत्ता सौंप दी जाती थी वहीं छोटे पुत्र को युवराज बना दिया जाता था।[५] वैदिक काल में भी ज्येष्ठ पुत्रों एवं पुत्रियों के अधिकारों की रक्षा की जाती थी।[६] रामायण[७] तथा महाभारत[८] में भी ज्येष्ठ

१ सम० क० ८, पृ० ७३४-३५; देखिए—अग्नि पुराण राजधर्म, पृ० ४०६ (धर्मार्थकामशास्त्राणि धनुर्वेद च शिक्षयेत् ॥ शिल्पानि शिक्षयेच्चैन नाप्तैर्मिथ्या प्रियं वदेत् ॥); मनु० ७, ४३ में वेद तत्त्वज्ञान आदि की शिक्षा की बात कही गई है।

२ डी० सी० सरकार—सेलेक्ट इंस्क्रिप्सन्स, पृ० २०७—"ततो लेख रूप-गणना-ववहार-विधि विसारदेन सर्व विजावदातेन नव वसानि योवराज पसासितं" खारवेल अभिलेख।

३. सम० क० ८, पृ० ७७३।

४ वही . पृ० ६९; ८, पृ० ८०५, ८३७; ९, पृ० ९७८; देखिए निशीथ चूर्णी ३, पृ० ८८।

५. वही २, पृ० १६७; ३, पृ० ६०७; ८, पृ० ७७३।

६. पी० वी० काणे—धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग २, पृ० ५९५।

७. रामायण २।३।४०, २।११०।३६।

८. महाभारत—सभा पर्व ६८।८।

पुत्र को ही राजपद का भागी बताया गया है। कौटिल्य ने लिखा है कि आपत्तिकाल को छोड़कर ज्येष्ठ पुत्र को ही राजा बनाना श्रेयष्कर है।[1] मनु ने भी लिखा है कि ज्येष्ठ पुत्र अपने पिता से सब कुछ प्राप्त करता है।[2] हर्षचरित में भी उल्लिखित है कि प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के पश्चात् बड़े पुत्र राज्यवर्धन का राज्याभिषेक हुआ था।[3]

समराइच्च कहा में उल्लिखित है कि राजसत्ता प्राप्त करने के पूर्व घोषणा कराई जाती थी और महादान, पूजा आदि के द्वारा अपूर्व उत्साह मनाया जाता था। दूसरे दिन एक बहुत बड़े समारोह में राजा, सामंत, मंत्री, पुरोहित तथा अन्य नागरिकों के मध्य राजा द्वारा विभिन्न नदियों, समुद्रों एवं तीर्थों आदि से लाये गये सुगंधित जल से अभिसिक्त किया जाता था तथा सामंत, मंत्री, पुरोहित आदि आशीर्वाद देते थे। तत्पश्चात् उसे सिंह चर्म पर बैठाया जाता था और राजतिलक लगा कर संप्रभुता का प्रतीक छत्र और सिंहासन प्रदान किया जाता था।[4] राज्याभिषेक के लिए आवश्यक मांगलिक सामग्रियों में दो मछलियाँ, सुगंधित जल से भरा हुआ कनक कलश, श्वेत पुष्प, महापद्म, अक्षत, पृथ्वी-पिण्ड, वृषभ, दधिपूर्ण पात्र, महारत्न, गोरोचन, सिंह चर्म, श्वेत छत्र, भद्रासन, चामर, दूर्वा, स्वच्छ मदिरा, गज मद, धान्य और दुकूल आदि का उल्लेख है।[5]

वैदिक काल में भी राज्याभिषेक के समय होने वाले राजा को सिंह चर्म पर बैठाकर पवित्र नदियों तथा समुद्रों से लाये हुए जल से स्नान कराया जाता था। वैदिक मंत्रों के साथ पुजारी यह संस्कार सम्पन्न करता तथा राजा को शक्ति आदि प्रदान करने वाले देवों की उपासना कराता था। तत्पश्चात् पवित्र धर्म ग्रन्थों की शपथ दिलाई जाती थी।[6] महाभारत में भी राज्याभिषेक के समय धर्म के अनुसार प्रशासन के लिए शपथ ग्रहण करने का उल्लेख है।[7] किन्तु समराइच्च कहा में धर्मग्रन्थों की शपथ का उल्लेख नहीं है।

१. अर्थशास्त्र १।१७।
२. मनु० ९।१०९।
३. हर्षचरित, पृ० २००।
४. सम० क० ७, पृ० ७२६; देखिए—निशीथ चूर्णी २, पृ० ४२०; ६, पृ० १०१।
५. वही २, पृ० १५२; ५, पृ० ४८३-८४।
६. ए० एस० अल्तेकर—स्टेट एण्ड गवर्नमेंट इन ऐंशियन्ट इंडिया, पृ० ७८।
७. महाभारत, १२।५९।१०६-०७ "प्रतिज्ञा चाधिरोहस्व मनसा कर्मणा गिरा। पालयिष्याम्यहं भौमं ब्रह्म इत्येव चासकृत्।

रामायण में भी राम के अभिषेक के समय जामवंत, हनुमान और अन्य दो व्यक्तियों द्वारा चार कलशों में समुद्र का जल ले आने का उल्लेख है। समुद्र के साथ-साथ पाँच सौ नदियों का जल लाया गया। कुल पुरोहित एवं वृद्ध मुनि वशिष्ठ ने राम और सीता को रत्न जटित सिंहासन पर बैठाया। सबसे पहले वशिष्ठ एवं अन्य मुनियों ने राम पर पवित्र एवं सुगंधित जल छिड़का। तत्पश्चात् कुमारियों, मंत्रियों, सिपाहियों एवं वणिक—निगमों ने भी जल छिड़का। वशिष्ठ ने राम के सिर पर अति प्राचीन मुकुट बांधा।[1]

बाण ने लिखा है कि शुभ मुहूर्त में कुल पुरोहित से अभिषेक सम्बन्धी सभी मंगल कार्य कराये गये और राजा ने स्वयं अपने हाथों मांगलिक जल से परिपूर्ण कलश के मंत्रपूत जल की धार छोड़ते हुए आनन्दपूर्वक चन्द्रापीड़ का राज्याभिषेक किया। उस अवसर पर सभी नदियों, तीर्थों आदि से जल लाया गया। साथ-साथ वैदिक प्रथा के अनुसार सब प्रकार की औषधियाँ, फल, सभी स्थानों की मिट्टी (समराइच्च कहा में इसे पृथ्वी पिण्ड कहा गया है) तथा रत्न आदि एकत्रित किये गये थे।[2]

अभिषेक संस्कार का उल्लेख अन्य ब्राह्मण[3] तथा जैन ग्रन्थों[4] में भी मिलता है।

सामंत

कुछ विचारकों के अनुसार राजनीतिक एवं प्रशासनिक प्रवृत्तियों के कारण राज्य व्यवस्था का सामंतवादी ढांचा मौर्योत्तर काल और विशेषकर गुप्त काल में प्रारम्भ हुआ।[5] छठवीं शताब्दी में विजित जागीरदारों को सामन्त के रूप में व्यवहृत किया जाने लगा।[6] कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी इन पड़ोसी जागीरदारों की

१. देखिए—रामायण—युद्ध काण्ड।
२. वासुदेवशरण अग्रवाल—कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १२३।
३. महाभारत—शांति पर्व ४०।९, १३; विष्णु धर्मोत्तर २।१८।२-८; अग्निपुराण-अध्याय २१८; हर्षचरित, पृ० १०३।
४. जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति ३।६८; आवश्यक चूर्णी, पृ० २०५; निशीथ चूर्णी, २, पृ० ४६२-६३; ३, पृ० १०१; उत्तराध्ययन टीका, ८, पृ० २४०; ज्ञातृ धर्म कथा, १, पृ० २८; आदि पुराण ११।३९-४५; १६।१९६-२१५; १६।२२५-२३३; २३।६०।
५. आर० एस० शर्मा—भारतीय सामंतवाद, पृ० २।
६. वही पृ० २४-२५।

स्वतंत्र सत्ता का प्रमाण मिलता है।[1] मौर्यकाल के पश्चात् इसका प्रयोग पड़ोसी भूमि के औचित्य के लिए किया जाने लगा[2] न कि जागीरदार के रूप में।[3]

पाँचवीं शताब्दी में सामंत शब्द का प्रयोग दक्षिण भारत में भूस्वामी के अर्थ में किया जाने लगा; क्योंकि शांतिवर्मन (ई० सन् ४५५-७०) के पल्लव अभिलेख में सामंत कुदामानयाः का उल्लेख प्राप्त होता है।[4] उसी शताब्दी के अन्तिम काल में दक्षिणी और पश्चिमी भारत के दानपत्रों में सामंत का उल्लेख जागीरदार (भूस्वामी) के अर्थ में प्राप्त होता है।[5] उत्तर भारत में सर्वप्रथम इसका प्रयोग उसी अर्थ में बंगाल अभिलेख और मौखरी शासक अनन्तवर्मन के बराबर पहाड़ी गुफा अभिलेख में उल्लिखित है, जिसमें उसके पिता को सामन्त कुदामनीः (भूस्वामियों में सर्वश्रेष्ठ) कहा गया है।[6] दूसरे यशोधरवर्मन (ई० सन् ५२५-५३५) के मंदसौर स्तम्भ लेख में भी सामंत का उल्लेख पाया जाता है, जिसमें वह समस्त उत्तर भारत के सामंतों को अपने आधीन करने का दावा करता है।[7]

समराइच्च कहा में सामंतवादी प्रथा का भी उल्लेख प्राप्त होता है। सामंत[8] लोग राजा-महाराजाओं के आधीन शासन करते थे। वे कर दाता नृपति के रूप में जाने जाते थे तथा राजा महाराजाओं का सम्मान करते थे।[9] सामंतों के पास अपनी निजी सेना एवं दुर्ग रहता था।[10] फिर भी वे स्वतंत्र शासक की आज्ञा के विरुद्ध कार्य नहीं करते थे। वाकाटकों के सामंत नारायण महाराज और शत्रुघ्न

१. अर्थशास्त्र १, ६।
२. मनु० ८. २८६-९; याज्ञ० २. १५२-३।
३. वी० यन० दत्ता–हिन्दू ला आफ इनहेरिटेन्स, पृ० २७।
४. राजबली पाण्डेय–हिस्टारिकल एण्ड लिटरेरी इन्सक्रिप्सन्स, न० २९, १-३।
५. लल्लन जी गोपाल—'सामंत—इट्स वैरिंग सिगनीफिकेंस इन एंसियन्ट इंडिया'–जर्नल आफ दी रवायल एसियाटिक सोसायटी अप्रैल १९६३ में।
६. कार्पस इन्सक्रिप्सनम् इंडिकेरम, ३, नं० ४९, १-४।
७. सेलेक्ट इन्सक्रिप्सन्स, पृ० ३९४, पंक्ति ५।
८. सम० क० २, पृ० १४७; ५, पृ० ३६५, ३८३, ४८१-८२, ४८५, ४८७; ७, पृ० ६३३, ६३५, ६९४; ८, ८४१; ९, ९३६, ९६१-६२, ९६४, ९७३, ९७६, ९७८।
९. वही ७, पृ० ७२६।
१०. वही २, पृ० १४७-४८।

महाराज, वैन्यगुप्त के सामंत रुद्रट, और कदम्बों के सामंत भानुशक्ति को अपने ही राज्य के कुछ ग्रामों की मालगुजारी दान करते समय अपने सम्राटों की अनुमति लेनी पड़ती थी।[१] राष्ट्रकूट शासक गोविन्द तृतीय का सामंत बुधवर्ष ने भी एक ग्राम दान करने के लिए अपने सम्राट से आज्ञा माँगी थी।[२] राष्ट्रकूट नृपति ध्रुव के सामंत शंकरगण ने भी ग्राम दान की आज्ञा माँगी थी।[३] इसी प्रकार परमार नरेश जयवर्मा के आदेश से उसके सामंत गंगदेव ने भूमि दान किया था।[४]

सामंत नृपति युद्ध-काल में शत्रु पर विजय पाने की लालसा से अपने सम्राटों की सैन्यबल की सहायता भी करते थे।[५] अन्य साक्ष्यों से भी पता चलता है कि सामंत लोग अपने सम्राटों को सैनिक मदद करते थे।[६] दक्षिण कर्नाटक का नरसिंह चालुक्य (९१५ ई०) अपने सम्राट की ओर से प्रतिहार सम्राट महीपाल के विरुद्ध युक्तप्रांत में जाकर लड़ा था।[७]

कभी-कभी सामंत-नृपति स्वतंत्र शासक बनने के लिए अपने स्वामी सम्राट के विरुद्ध विद्रोह भी कर देते थे जिसका दमन करने के लिए स्वामी-नृपति सैन्य शक्ति का सहारा लेते थे।[८] विद्रोही सामंतों को पराजित हो जाने पर बड़ी अपमानजनक यातनाएँ सहन करनी पड़ती थी।[९] कभी-कभी उनसे विजेता के अश्वशाला, हस्तिशाला आदि में दंड स्वरूप झाड़ू दिलवाई जाती थी।[१०]

केन्द्रीय सत्ता कमजोर पड़ने पर सामंत-नृपति स्वतंत्र भी हो जाते थे। यथा गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य की अवनति पर उसके अनेक सामंतों ने 'महाराजाधिराज परमेश्वर' आदि उपाधियाँ धारण कर ली थीं।[११]

---

१. इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली ६, पृ० ५३; इंडियन एंटीक्वेरी ६, पृ० ३१-३२।
२. इंडि० एंटीक्वेरी १२, पृ० १५।
३. इपि० इंडि० ९, पृ० १९५।
४. वही ९, पृ० १२०-३।
५. वही १२, पृ० १०१।
६. अल्तेकर—राष्ट्रकूटों का इतिहास, पृ० २६५।
७. सम० क० १, पृ० २७; २, १४७, १५३-५४; ८, पृ० ७३१-७२।
८. कुमारपाल प्रबंध, पृ० ४२।
९. इपि० इंडि० १८, पृ० २४८।
१०. वही १, पृ० १९३; ३, पृ० २६१-७।

समराइच्च कहा में महासामंतों का भी उल्लेख है जो स्वतंत्र सम्राटों के समान ही वैभव वाले अनेक सामंतों के अधिपति तथा सम्राट के अत्यन्त विश्वसनीय व्यक्ति होते थे।[1] महासामंतों के स्वतंत्र राजाओं से वैवाहिक सम्बन्ध भी होते थे।[2] उनके अधिकार में उनकी निजी सेना, दुर्ग तथा कोष आदि होते थे।[3] अतः वह स्वतंत्र सम्राट का निकटस्थ, विश्वसनीय और लगभग उन्हीं की तरह सम्पन्न समझा जाता था। हर्ष के दरबार में अनेक महासामंत और राजा उपस्थित थे, इनकी तीन श्रेणियाँ थीं—एक शत्रु महासामंत जो जीत लिये गये थे। दूसरी श्रेणी में वे राजा आते थे जो सम्राट के प्रताप से अनुगत होकर वहाँ आये थे। तीसरी श्रेणी के वे नृपति थे जो सम्राट के अनुरागवश आकृष्ट हुए थे।[4] अपराजितपृच्छा ग्रंथ के अनुसार लघु सामंत की आय ५ सहस्र, सामंत की दस सहस्र, महासामंत अथवा सामंत मुख्य की आय बीस सहस्रकर्षापण होनी चाहिए।[5] अपराजितपृच्छा में यह भी उल्लिखित है कि महाराजाधिराज परमेश्वर की उपाधि धारण करने वाले सम्राट के दरबार में चार मण्डलेश, बारह माण्डलिक, सोलह महासामंत, बत्तीस सामंत, एक सौ साठ लघु सामंत तथा चार सौ चतुरांशिक (चौरासी) उपाधिधारी होने चाहिए।[6] इन सभी उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि समराइच्च कहा में उल्लिखित सामन्त, महासामन्त सम्राटों के अधीन कर दाता नृपति के रूप में शासन करते थे, जिनमें महासामन्त का पद सामन्तों से ऊँचा होता था।

कुलपुत्रक

तत्कालीन शासन पद्धति के अन्तर्गत राजा-महाराजाओं के आधीन सामंतों की तरह कुलपुत्रक[7] भी होते थे। ये लोग भी राजाओं को युद्ध के अवसरों पर सैनिक सहायता देते थे।[8] कुलपुत्रकों का राजाओं, महाराजाओं के यहाँ बड़ा ही सम्मान होता था। ये 'कुलपुत्रक' दान में व्यसनी, अभिमान धनी, दयालु, शूर

१ सम० क० २, पृ० ७९, से ८३:५, ४७२।
२. वही २, पृ० ७९ से ८३।
३ वही २, पृ० ७९ से ८३।
४. अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ४३।
५. अपराजितपृच्छा ८२.७-१०, पृ० २०३।
६ वही ७८,३२-३४, पृ० १९६।
७ सम० क० १, पृ० २९; २.१५३; ३.१७२; ५.३८७-८८,३८९-९०-९१; ६,५६५; ७.६६९, ८.७७३।
८. वही ७, पृ० ६६९।

तथा शरणागत रक्षक होते थे।[१] अपने गुण तथा पराक्रम के कारण ये लोग काफी सम्मानित समझे जाते थे। हर्ष चरित में भी एक स्थान पर उल्लिखित है कि अभिजात राजपुत्रों के द्वारा भेजे गये पीतल-जटित (कुप्य-युक्त) वाहनों में कुलीन कुलपुत्रों की स्त्रियाँ जा रही थीं।[२] दक्षिण के वाकाटक लेखों में राज संदेश वाहकों को कुलपुत्र (कुलीन, उच्च कुल का) कहा गया है।[३] पल्लव लेखों में इन्हें महाप्रधान (मन्त्री) का संदेशवाहक बताया गया है।[४] आसाम से प्राप्त एक लेख में इस श्रेणी का एक अधिकारी बड़े गर्व से कहता है कि मैं सैकड़ों राजाओं का वहन कर चुका हूँ।[५]

समराइच्च कहा तथा अन्य साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि ये कुलपुत्रक राज परिवार से संबंधित उच्च कुल के होते थे जो अपने मान-सम्मान के धनी तथा पराक्रमी होते थे। इनका कार्य युद्ध काल में सैनिक सहायता के साथ-साथ संदेश पहुँचाना भी था।

मंत्रि और मंत्रिपरिषद्

कौटिल्य ने राज्य के सात अंग-स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र गिनाया है।[६] मानसोल्लास में भी स्वामी, अमात्य, सुहृद, कोष, राष्ट्र, दुर्ग एवं बल को सप्तांग बताया गया है।[७] प्रशासनिक कार्यों में राजा की मदद के लिए मंत्रिपरिषद् का गठन किया जाता था जिसमें एक से अधिक मंत्री होते थे।[८] राजा प्रत्येक कार्य करने के पूर्व अपने मंत्रियों से सलाह लेता था।[९] महाभारत में एक स्थान पर बताया गया है कि राजा उसी प्रकार मंत्रियों पर निर्भर रहता है जैसे जीव जन्तु बादलों पर, ब्राह्मण वेदों पर और स्त्रियाँ अपने पति पर।[१०] मनु के अनुसार भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न कार्यों के विशेषज्ञ होते हैं

१. सम० क० ५, पृ० ३८७।
२. अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १४५।
३. इपिग्रैफिया इंडि० २२, पृ० १६७।
४. इंडि० एंटी० ५, पृ० १५५।
५. इपि० इंडि० ११, पृ० १०६।
६. अर्थशास्त्र ६,१।
७. मानसोल्लास अनुक्रमणिका, श्लोक २०।
८. सम० क० २, पृ० १५०-५१।
९. सम० क० २, पृ० १५१।
१०. महाभारत—उद्योगपर्व ३७-३८।

तो अकेले राजा हर काम को दक्षतापूर्वक नहीं कर सकता। परिणामतः उसे राज्य तथा स्वयं को बर्बादी से बचाने के लिए मंत्रियों का सहयोग लेना चाहिए।[१]

मंत्री गण भी राजा के प्रति स्वामिभक्ति की भावना से काम करते थे।[२] वे नीति और बुद्धि में कुशल होते।[३] परामर्श तथा अन्य प्रकार के प्रशासनिक कार्यों में सहयोग के साथ-साथ न्याय कार्य भी देखते थे।[४] कौटिल्य के अनुसार मंत्री को स्वदेशी, उच्च कुल का, कला में परिपक्व, दूरदर्शी, बुद्धिमान, तेज याददाश्त वाला, धीर, चतुर, उत्साही, सच्चरित्र, शक्तिशाली, बहादुर और अच्छे स्वास्थ्य वाला, स्वतंत्र विचार का तथा घृणा तथा शत्रु भाव रहित होना चाहिए।[५] अन्य ब्राह्मण[६] तथा जैन[७] ग्रन्थों में भी मंत्रियों को साम, दाम, दण्ड और भेद नीति में कुशल, नीतिशास्त्र में पण्डित, गवेषण आदि में चतुर, कुलीन, श्रुति-सम्पन्न पवित्र, अनुरागी, धीर, वीर, निरोग, प्रगल्भ वाग्मी, प्राज्ञ, राग-द्वेष रहित, सत्य सन्ध, महात्मा, दृढ़ चित्त वाला, निरामय, प्रजा प्रिय आदिगुणों से युक्त होना आवश्यक बताया गया है। यद्यपि राज्य के सभी कार्यों के प्रति अंतिम जिम्मेदारी राजा की होती थी फिर भी वह मंत्रियों की सलाह मानता था।[८] मंत्रियों का यह सर्व-श्रेष्ठ कर्तव्य था कि राजा को सही मार्ग दिखा कर गलत कार्यों से बचाये।[९] कथा सरित्सागर में उल्लिखित है कि मंत्री को राजा के प्रति स्वामिभक्त तथा जनता का शुभेच्छु होना चाहिए।[१०] राजा भी मंत्रियों का सम्मान

१. मनु० ७।५५ विशेषतोऽसहायेन किन्तु राज्यं महोदयम्।

२. सम० क० १, पृ० ४०; ४, ३३५।

३. वही २, पृ० १५१।

४. वही ४, पृ० २५७-५८-५९, २६२।

५. अर्थशास्त्र १,९; देखिए—महाभारत १२ वां पर्व, अध्याय-८३, कामंदक नीतिसार, ४-२५-३१।

६. महाभारत १२, अध्याय ८३; कामन्दक नीतिसार ४।२५-३१।

७. व्यवहार भाष्य, १, पृ० १३१-अ; ज्ञातृ धर्म कथा १, पृ० ३; आदिपुराण, ५।७; मानसोल्लास २।२।५२-५९।

८. अर्थशास्त्र १,१५; देखिए—वृहत्कल्पभाष्य १, पृ० ११३।

९. वही १,१५; देखिए—कामंदक०: IV ४१४।

१०. कथासरित्सागर १७।४६।

करता था।[1] वह मंत्रियों को अपना हृदय समझता था।[2] राज्यों में धर्म एवं अर्थ की समृद्धि आदि मंत्रियों की कार्य पटुता पर निर्भर रहती थी।[3] मौखरी प्रशासन में मंत्रिपरिषद् को प्रशासनिक अधिकार प्राप्त था; क्योंकि जब अंतिम राजा संतान रहित मर गया तो मंत्रिपरिषद् ने ही मौखरी प्रशासन हर्षवर्धन को सौंपा था।[4] अतः समराइच्च कहा के उल्लेखानुसार यह स्पष्ट होता है कि मंत्री राजा की ही भाँति सर्वगुण सम्पन्न होते थे तथा राजा-राज्य तथा जनहित की भावना से कार्य करते थे। मंत्रिपरिषद् को ही प्राचीन प्रशासनिक गाड़ी की धुरी समझना चाहिए।

समराइच्च कहा में यद्यपि परिषद् में मंत्रियों की कोई निश्चित संख्या नहीं दी गयी है फिर भी राजदरबार में एक महामंत्री[5] तथा अन्य साधारण मंत्री होने[6] थे। महाभारत में मंत्रियों की संख्या आठ बतायी गयी है।[7] मनु के अनुसार मंत्रिपरिषद् में मंत्रियों की संख्या सात या आठ होनी चाहिए।[8] मनु[9] और कौटिल्य[10] इस बात पर सहमत हैं कि राज्य की आवश्यकतानुसार मंत्रियों की संख्या निश्चित की जानी चाहिए। यशस्तिलक में राजा को एक ही मंत्री पर पूर्ण रूप से निर्भर न होने की बात कही गयी है जिससे स्पष्ट होता है कि मंत्रियों की संख्या अवश्य ही अधिक रही होगी।[11]

---

१. इपि० इंडि० ९, पृ० २५४-परबल नृपते मूर्ध्नि वन्द्यः प्रधानः; देखिए—इंडि० एंटीक्वेरी १८, पृ० ७-यो जिह्वा पृथ्वीशस्य योराज्ञो दक्षिणः करः।
२. जर्नल आफ दी बाम्बे ब्रांच आफ रवायल एशियाटिक सोसायटी १५, पृ० ५।
३. इंडियन एंटीक्वेरी ७, पृ० ४१।
४. वाटर्स आन युवान च्वांग १, पृ० ३४३।
५. सम० क० २, पृ० १४५; ३, २९५।
६. वही १, पृ० २१, ६८; ४, २५७-५८-५९, २७२, २८३, २९५; ६, ५९८; ६३०-३१, ६९२, ६९४, ७०७; ८, ८३२, ८४४।
७. महाभारत १२, ८५, अष्टानां मंत्रिणां मध्ये मंत्र राजोपधारयेत्।
८. मनु ७।५४—सचिवान् सप्त चाष्टौ वा कुर्वीत सुपरीक्षितान्—; देखिए—मानसोल्लास २।२।५७।
९. मनु० ७।६१।
१०. अर्थशास्त्र १, १५ 'यथा सामर्थ्यमिति कौटिल्यः।
११. के० के० हैंडीकी—यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर, पृ० १०१।

समराइच्च कहा में मंत्री[१], महामंत्री[२], अमात्य[३], प्रधान अमात्य[४] और सचिव[५] तथा प्रधान सचिव[६] का उल्लेख है। रामायण में कहीं मंत्री को सचिव बताया गया है[७] तथा कहीं इन दोनों में भेद बतलाया गया है।[८] पश्चिमी भारत के शक प्रशासकों ने मति सचिव (मंत्री) तथा कर्म सचिव (विभागीय मंत्री) की सहायता से प्रशासन कार्य किया था।[९] अर्थशास्त्र में सभी मंत्रियों को संयुक्त रूप से अमात्य कहा गया है।[१०] किन्तु एक अन्य स्थान पर कौटिल्य ने मंत्रियों का निर्वाचन अमात्यों के बीच में से करने का संकेत किया[११] है, जो कि मंत्री और अमात्यों के बीच अंतर का द्योतक है। मनु ने प्रधान मंत्री को ही अमात्य कहा है।[१२]

उपरोक्त भेद-प्रभेद के अलावा समराइच्च कहा की भाँति निशीथ चूर्णी में भी अमात्य[१३], सचिव[१४], मंत्री[१५] तथा महामंत्री[१६] का उल्लेख मिलता है किन्तु इनमें भेद नहीं बताया गया है। किन्तु वसाक के अनुसार सभी अमात्य जो सचिव

---

१. सम० क० १, पृ० २१, ६४; ४, २५७-५८-५९, २७२, २८३, २९५; ६, ५९८, ६३०-३१, ६९२, ६९४, ७०७; ८, ८३२, ८४४; देखिए—उपासक दशा २, परिशिष्ट पृ० ५६; अर्थशास्त्र १, ६।

२. वही २, पृ० १४५, १५१; ४, २९५; इण्डियन एण्टीक्वेरी ६, पृ० २४ तथा १८, पृ० २३८।

३. वही २, पृ० १४६; ३, १९६; ४, २७३-७४; ७, ६३१-३२-३३; ८, ८३७; ९, ८९७-९८, ९३५, ९७८; देखिए—निशीथ चूर्णी ४, पृ० २८२; १, पृ० १६४; आर्कियालॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया एनुअल रिपोर्ट, १९५३-५४, पृ० १०७; महाभारत १२।८५।७-८; अर्थशास्त्र १, १५।

४. वही ७, पृ० ६९३-९४-९५; देखिए—निशीथ चूर्णी २, पृ० ४४९; इपि० इण्डि०—११, पृ० ३०८।

५. सम० क० ३, पृ० १६२; ९, ८८१।

६. वही ९, पृ० ८८२।

७. रामायण २।११२।७।

८. वही १।७।३ तथा १।८।४।

९. रुद्रदामन प्रथम का जूनागढ़ अभि०, इपि० इण्डि० ८, पृ० ४२।

१०. अर्थशास्त्र १, १५।

११. वही १, पृ० ८।

१२. मनु० ७।६५।

१३. निशीथ चूर्णी १, पृ० १६४; ४, पृ० २८१।

१४. वही १, पृ० १२७।

१५. वही १, पृ० १२७।

१६. वही ३, पृ० ५७।

कहे जाते थे, मंत्री नहीं थे।[1] मध्यकालीन अभिलेखों[2] में अमात्य को सचिव से भिन्न सूचित किया गया है और उन्हें माल तथा कर विभाग का मंत्री बताया गया है। निशीथ चूर्णी में एक स्थान पर सचिव को मंत्री बताया गया है[3] तथा एक स्थान पर सुबुद्धि नामक व्यक्ति को जियासत्तु नामक राजा का अमात्य और मंत्री दोनों बताया गया है।[4] विभिन्न चालुक्य अभिलेखों में महामंत्री को महामात्य के रूप में चित्रित किया गया है।[5] अतः स्पष्ट होता है कि कार्यक्षेत्र के अनुसार समराइच्च कहा में उल्लिखित मंत्री, अमात्य तथा सचिव आदि मंत्री गण के लिए तथा महामंत्री, प्रधान अमात्य तथा प्रधान सचिव आदि प्रधान मंत्री के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

पुरोहित

प्रशासन के कार्यों में प्रधान मंत्री, प्रधान अमात्य की भाँति राज पुरोहित का पद भी बड़ा सम्मानजनक था।[6] समराइच्च कहा में उल्लिखित है कि पुरोहित को सकलजनों से सम्मानित, धर्मशास्त्र का पंडित, लोक व्यवहार में कुशल, नीतिवान, वाग्मी, अल्पारम्भपरिग्रह वाला तथा तंत्र-मंत्र आदि का वेत्ता होना चाहिए।[7] अर्थ शास्त्र[8] के अनुसार पुरोहित को शास्त्र प्रतिपादित विद्याओं से युक्त, उन्नत कुल शीलवान, षडङ्गवेदज्ञाता, ज्योतिषशास्त्र, शकुनशास्त्र तथा

१. वसाक, आर० जी०—मिनिस्टर्स इन ऐंसियन्ट इण्डिया इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, वाल्यूम १, पृ० ५२३-२४ (वसाक के अनुसार अमात्य और सचिव शब्द का अर्थ 'सहायक' अथवा 'साथी' से है; किन्तु मंत्री का अर्थ 'मंत्र' (गुप्त-सलाह) अथवा राजनीतिक सलाह से है।); अमर कोष ८०४-५ से पता चलता है कि एक 'अमात्य' जो कि राज्य का 'अधिसचिव' अथवा 'मति सचिव' (सलाह देने वाला मंत्री) है, मंत्री कहा जायगा, और मंत्रियों के अलावा सभी 'अमात्य' कर्म सचिव थे।
२. ए० एस० अल्तेकर—राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स, पृ० ८१।
३. निशीथ चूर्णी २, पृ० २६७—अमच्चों मंत्री।
४. वही ३, पृ० १५०।
५. ए० एस० अल्तेकर—स्टेट एण्ड गवर्नमेंट इन ऐंसियन्ट इण्डिया, पृ० १२५।
६. सम० क० १, पृ० २१, ३८, ४८; ६, ५०५, ६०१; ७, ६३८; ९, ८९५; देखिए—आदि० ३७, १३५।
७. वही १, पृ० १०।
८. अर्थशास्त्र १, ९।

दण्डनीति शास्त्र में निपुण और दैवी तथा मानुषी आपत्तियों के प्रतीकार में समर्थ होना चाहिए। मानसोल्लास में राजपुरोहित को त्रयी विद्या, दण्डनीति, शान्ति कर्म आदि गुणों का ज्ञाता कहा गया है।[1]

प्राचीन भारतीयशासन पद्धति में धर्म विभाग या धार्मिक विषय पुरोहितों के आधीन था। वह राजधर्म और नीति का संरक्षक था।[2] इस विभाग के अधिकारी को मौर्य काल मे 'धर्म महामात्र' सातवाहनकाल में 'श्रवण महामात्र' गुप्त शासन काल में 'विनयस्थितिस्थापक' और राष्ट्रकूट काल में 'धर्मांकुश' कहा जाता था।[3]

पुरोहित राज्य मे उपद्रव तथा राजा की व्याधियों की शान्ति के लिए यज्ञ आदि का अनुष्ठान करता था।[4] कभी-कभी उसे राज्यहित के लिए दूतकार्य भी करना पड़ता था।[5] निशीथ चूर्णी में पुरोहित को धार्मिक कृत्य (यज्ञादि शांतिकर्म) करने वाला बताया गया है।[6] विपाक सूत्र में भी पुरोहित द्वारा, राज्योपद्रव शान्त करने, राज्य और बल का विस्तार करने तथा युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए अष्टमी और चतुर्दशी आदि तिथियों में नवजात शिशुओं के हृदय पिण्ड से शान्ति होम किये जाने का उल्लेख है।[7] वैदिक काल मे पुरोहित मंत्र, योग तथा पूजा आदि के द्वारा विजय प्राप्त करने की लालसा से राजा के साथ युद्ध क्षेत्र मे भी जाता था।[8] उसे शास्त्र, शास्त्र और राजनीति मे कुशल होना बताया गया है। जब लम्बे समय तक राजा यज्ञादि अनुष्ठान में व्यस्त रहता तो उस समय तक पुरोहित ही राज कार्य देखता था।[9]

धीरे-धीरे पुरोहित का महत्त्व कम होता गया और २०० ई० के बाद में तो उसे मंत्रिपरिषद् का सदस्य ही नही बनाया जाने लगा।[10] अत. हरिभद्र सूरि के

१. मानसोल्लास २, २, ६०; देखिए—याज्ञवल्क्य स्मृति १, ३१३।
२. ए० एस० अल्तेकर—प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ० १५२।
३. वही पृ० १५२।
४. सम० क० १, पृ० २१।
५. वही १, पृ० ३८।
६. निशीथ चूर्णी २, पृ० २६७; देखिए—स्थानांगसूत्र ७, ५५८।
७. विपाक सूत्र ५, पृ० ३३।
८. ऋग्वेद २।३३।
९. आपस्तम्ब धर्मसूत्रम्, २०।२।१२; ३।१।३; देखिए—बौधायन धर्म सूत्रम् १५।४।
१०. अल्तेकर—स्टेट एण्ड गवर्नमेंट इन ऐंसियन्ट इण्डिया, पृ० १६९; देखिए—गहडवाल—अभि०—राजराज्ञी युवराज मंत्रि पुरोहित प्रतिहार सेनापति....।

काल तक आते-आते पुरोहित का कार्य मुख्यतया धार्मिक कृत्य सम्पन्न करना ही रह गया था। उसे राजगुरु कहा जाता था। यद्यपि वह मंत्रिपरिषद् का सदस्य नहीं था, फिर भी राज दरबार में उसे सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था।

अन्य अधिकारी

भाण्डागारिक

शासन सत्ता की सुव्यवस्था एवं स्थायित्व के ~~लिए कोष~~ को राज्य के सात आवश्यक तत्त्वों में से एक बताया गया है[1]। हरिभद्र कालीन भारतीय राजा-सत्ताधारियों के पास भाण्डागार[2] की व्यवस्था थी। भाण्डागार (कोष) का अधिकारी भाण्डागारिक होता था।[3] वह भाण्डागार की व्यवस्था का बराबर ध्यान रखता था। उसकी राय से ही भाण्डागार से धन आदि खर्च किया जाता था। लेकिन भाण्डागार का सर्वोच्च अधिकारी राजा ही होता था। आदि पुराण में कोष के लिए श्रीगृह[4] शब्द का उल्लेख हुआ है। निशीथसूत्र में उल्लिखित है कि भाण्डागार में मणि-मुक्ता और रत्नों का संचय किया जाता था।[5] महाभारत,[6] कामंदक नीतिसार[7] और नीतिवाक्यामृत[8] में कहा गया है कि कोष राज्य की जड़ है और इसकी देख-रेख यत्नपूर्वक होनी चाहिए। अभिलेखों में भी भाण्डागारिक का उल्लेख किया गया है। नासिक अभिलेख में इसका भांडागारिकया के रूप में उल्लेख मिलता है।[9] कन्नौज नृपति के चन्द्रावती अभिलेख (संवत् ११४८) में भाण्डागारिक का उल्लेख आया है।[10]

लेख वाहक

प्रशासनिक कार्यों की सुविधा के लिए संदेश पत्र को एक स्थान से दूसरे

---

१. अर्थशास्त्र ६,१।
२. सम० क० ३, पृ० २१०; ४,२५७,२३०; ५,६९७।
३. सम० क० ४, पृ० २५४-२५९-२३१; ७, ६६५; ८, ७४६, ८३८; ९, ८९८; देखिए—अष्टाध्यायी ४।४।७०; ६,२,६६ तथा ६,२,६७; जातक १, ५०४।
४. आदि० ३७।८५।
५. निशीथ सूत्र ९।७।
६. महाभारत १२।१३०।३५।
७. कामंदक० ३१।३३।
८. नीतिवाक्या० २१।५।
९. इपि० इंडि० ८, पृ० ९१।
१०. वही० ९, पृ० ३०२।

स्थान तक पहुँचाने के लिए लेख वाहक[1] की नियुक्ति होती थी। यह संचार वाहक का कार्य करता था। हर्ष चरित में लेख वाहक को लेख हारक कहा गया है जो लेख (पत्र) पहुँचाने का कार्य करता था। इसके सिर पर नीली पट्टी माला की तरह बँधी रहती थी जिसके भीतर लेख रखकर प्रेषित करता था।[2] राजतरंगिणी में इसका उल्लेख लेख हारक[3] के रूप में हुआ है।

राज-प्रासाद

प्राचीन काल में राजा-महाराजाओं के आवास के लिए सुन्दर एवं आकर्षक राजप्रासाद निर्मित होते थे। अभयदेव की व्याख्या प्रज्ञप्ति टीका में देवों के निवास स्थान को प्रासाद और राजाओं के निवास स्थान को भवन कहा गया है।[4] प्राचीन जैन ग्रन्थों में आठतल वाले प्रासादों का उल्लेख है। ये प्रासाद सुन्दर शिखर युक्त तथा ध्वजा, पताका, छत्र और मालाओं से सुशोभित तथा मणि मुक्ता जटित फर्श वाले होते थे।[5] यशस्तिलक में त्रिभवन तिलक प्रासाद का उल्लेख है जो श्वेत पाषाण (संगमर्मर) से निर्मित था। शिखरों पर स्वर्ण कलश लगाये गये थे। रत्नमय स्तम्भों वाले ऊँचे-ऊँचे तोरणों के कारण राजभवन कुबेरपुरी की तरह लग रहा था।[6] आदि पुराण में भी सर्वतोभद्र प्रासाद तथा वैजयन्त भवन का उल्लेख है।[7] बाणभट्ट के कादम्बरी में महा प्रासाद का उल्लेख है।[8] समराइच्च कहा में सर्वतोभद्र प्रासाद तथा विमान छन्दक प्रासाद का विस्तृत एवं सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है।

सर्वतोभद्र प्रासाद

यह प्रासाद राजा के सभी प्रकार की सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण होता था।[9] इसमें तोरण तथा वन्दन मालाएँ लटक रही थी, सुगंधित, श्वेत और आकर्षक

१. सम० क० ४, पृ० ३६१-६२; ६, पृ० ५३३; ८, ८१४।
२. वासुदेवशरण अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ८९, तथा पृ० १८०।
३. राजतरंगिणी ६। ३१९।
४. अभय देव, व्याख्या प्रज्ञप्ति टीका ५,७, पृ० २२८ (बेचर दास अनु०)।
५. ज्ञातृधर्म कथा १, पृ० २२; उत्तराध्ययन सूत्र १९।४; उत्तराध्ययन टीका १३, पृ० १८९।
६. यशस्तिलक, पृ० ३४२-४३-४४।
७. आदि० ३७।१४६-४७।
८. कादम्बरी, पृ० ५८।
९. सम० क० १, पृ० ४३।

पुष्प मालाएं इसके सौंदर्य को निरंतर वृद्धि करती थी।[१] आदि पुराण में भी सर्वतोभद्र प्रासाद का उल्लेख आया है जो चक्रवर्ती राजा का आवास था। इसमें देदीप्यमान रत्नों से मंडित तोरण लगे थे।[२] मानसार में भी सर्वतोभद्र को दण्डक स्वस्तिक, मौलिक, चतुर्मुख आदि की भांति एक अन्य प्रकार का प्रासाद बताया गया है।[3] यह विशेषतया सप्तमाल (सात भवनों की पंक्ति) कहा गया है।[४]

विमान छन्दक प्रासाद

राजा अपनी सुख-सुविधा के विचार से राजधानी के बाहर भी सुन्दर एवं आकर्षक विमान छन्दक नामक राजप्रासाद का निर्माण कराते थे।[५] यह महल वर्षा ऋतु की शोभा को धारण करने वाला था। इसकी अलंकारिता का विस्तृत वर्णन समराइच्च कहा में किया गया है।[६] इसमें स्वर्ण जटित स्तम्भ तथा सुन्दर गलियाँ तथा द्वार बने थे। राजप्रश्नीय सूत्र में भी सूर्याभ देव के विमान प्रासाद का वर्णन किया गया है। यह प्रासाद चारो तरफ प्राकार से वेष्टित था।[७] इसके चारों तरफ द्वार बने थे जो ईहामृग, वृषभ, नरतुरग (मनुष्य के सिर वाला घोड़ा), मगर, विहग, सर्प, किन्नर, रुरु (हरिण), शरभ, चमर, कुंजर, वनलता और पद्मलता की आकृतियाँ बनी थी।[८] मानसार में विमान को हर्म्य, अन्लाय, अधिस्नाक, प्रासाद, भवन, क्षेत्र मंदिर, आयतन, वेश्मा, गृह, आवास, छाया, धमन, वास, गेह, आगार, सदन आदि का पर्याय बताया बताया गया है।[९]

भवनदीर्घिका

भवनोद्यान से लेकर अंतःपुर तक एक छोटी सी नहर रहती थी। इसकी लंबाई के कारण ही इसे भवन दीर्घिका कहा जाता था। दीर्घिका के मध्य में गन्धोदक से पूर्ण क्रीडा वापियाँ बनी रहती थी। इसमें कमल खिले रहते थे, हंस क्रीडा किया करते थे तथा राजा और रानियाँ भी इस भवन दीर्घिका में

---

१. सम० क० १, पृ० ४३।
२. आदि० ३७।१४६।
३. पी० के० आचार्य—आर्किटेक्चर आफ मानसार, पृ० ३७३।
४. वही पृ० २७६।
५. सम० क० १, पृ० १५।
६. वही १, पृ० १५।
७. जगदीश चन्द्र जैन—जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० ३३१-३२।
८. वही पृ० ३३१-३२।
९. पी० के० आचार्य—आर्किटेक्चर आफ मानसार, पृ० २२९।

स्नान करती थीं ।[1] यशस्तिलक में भी भवन दीर्घिका का उल्लेख आया है जिसका तलभाग मरकतमणि का बना हुआ था[2] । दीवालें स्फटिकमणि[3] से, सीढ़ियाँ स्वर्ण[4] से तथा तट प्रदेश मुक्ताफल[5] से निर्मित थे । जल को कहीं हाथी, कहीं मकर इत्यादि के मुँह से झरता हुआ दिखलाया गया था[6] । जलतरंगों पर कर्पूर का छिड़काव था[7] तथा किवाड़ों पर चंदन का लेप था[8] । बीच में पुष्करिणी बनाई गयी थी (जल को रोक कर) जिसमें कमल खिले थे[9] । आगे सुगंधित जल युक्त कूप बनाया गया था जिसमें कस्तूरी और केसर से सुवासित शीतल जल भरा हुआ था ।[10] तत्पश्चात जल को मृणाल की तरह पतली धारा के रूप में बदल दिया गया था[11] । अंत में यह दीर्घिका प्रमद वन में पहुँचती दिखायी गयी है जहाँ विविध प्रकार के कोमल पत्तों और पुष्पों से पल्लव और प्रसून शय्या बनायी गयी थी[12] । हर्षचरित[13] तथा कादम्बरी[14] में भवन दीर्घिका का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है । कालिदास ने भी भवन दीर्घिका का वर्णन किया है[15] । इन साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि भवन दीर्घिका राजमहल निर्माण कला की एक विशेषता थी ।

वाह्याली

राजप्रासाद के बाहर राजपुत्रों के द्वारा घोड़ों पर सवार होकर भ्रमण

१. सम० क० १ पृ० ८२; ५, पृ० ४७२ ।
२. यशस्तिलक पृ० ३८ पू० (मरकत मणि विनिर्मित मूलाम्) ।
३. वही पृ० ३८ ।
४. वही पृ० ३८ (कांचनोपचितसोपान परंपराम्) ।
५. वही पृ० ३८ (मुक्ताफलपुलिन पेशल पर्यंताम्) ।
६. वही पृ० ३९ (करिमकर मुखमुच्यमानवारिभरिताभोगाम्) ।
७. वही पृ० ३९ ।
८. वही पृ० ३९ ।
९. वही पृ० ३९ ।
१०. वही पृ० ३९ ।
११. वही पृ० ३९ ।
१२. वही पृ० ३९ (विचित्र पल्लव प्रसून फलस्फामधिकाम्) ।
१३. वासुदेवशरण अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २०६ ।
१४. अग्रवाल—कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३७१-७२ ।
१५. रघुवंश १६-१३; देखिए—आदि० ८-२२ ।

करने के स्थान को वाह्याली कहा जाता था।[1] मनोरंजनार्थ राजकुमार घोड़े पर सवार होकर वाह्याली में क्रीड़ा करते थे। निशीथ चूर्णी[2] में भी घोड़ों को शिक्षा देने के स्थान को वाह्याली बताया गया है। मानसोल्लास में वाजि वाह्याली तथा गज वाह्याली का उल्लेख है। वाह्याली की भूमि कीचड़, पाषाण तथा शंकु से हीन तथा न अधिक मुलायम और न अधिक कठोर होती थी[3]। दो द्वारों से युक्त उत्तर दिशा की ओर दर्शन मंडप बनाया जाता था। वाह्याली का निर्माण हो जाने पर तथा गृहकारकों के निवेदन करने पर हयाध्यक्ष को बुला कर राजा घोड़े को वाह्याली में लाने की आज्ञा देता था[4]। गज वाह्याली में गजों की क्रीड़ा होती थी। यह वाह्याली १०० धनुष के बराबर लम्बी तथा ६० धनुष के बराबर चौड़ी थी। वह भूमि मिट्टी, पत्थर, कण्टकादि से शून्य, समतल और चिकनी होती थी तथा वह पूर्व दिशा की ओर ऊँची होती थी। उनमें दो विशाल द्वार होते थे। उनके आगे दो विशाल तोरण पूर्व दिशा की ओर मुख करके बनाए जाते थे[5]। वाह्याली के दक्षिणी मध्य भाग में ऊंचा एवं सुन्दर आलोक मंदिर बनवाया जाता था। वह अत्यन्त ऊँचा होता था और उसके चारों ओर गहरी खाई होती थी। उस परिखा पर फलक द्वारा सीढ़ियों से पूर्ण मार्ग बनवाया जाता था। इस प्रकार का गृह बनवाने से गज उस मंदिर तक पहुँच सकते थे। इसी प्रकार दक्षिण भाग के समीप ही कुछ पीछे परिखा से पूर्ण, ऊँचा, चित्रों से पूर्ण भित्ति वाला, सुरम्य, विशाल, आठ स्तम्भों से पूर्ण, स्थूल, हाथियों के वक्षस्थल के बराबर पूर्वी द्वार के समीप उत्तर दिशा की ओर एक अन्य मंडप बनवाया जाता था[6]। गज वाह्याली की भूमि तीन भागों में विभाजित थी—द्विप भूमि, नृप भूमि तथा परिकर भूमि[8]।

आस्थानिक मण्डप (सभा मंडप)

समराइच्च कहा में आस्थानिक मंडप अथवा सभा मंडप का भी उल्लेख

---

१. स० क० १, पृ० १६।
२. निशीथ चूर्णी १, २३-२४।
३. मानसोल्लास ४, ४, ६६२-६३।
४. वही ४, ४, ६६६।
५. वही ४, ३, ५१५-१७।
६. वही ४, ३, ५१८-२१।
७. वही ४, ३, ५२३
८. वही ४, ३, ५४७।

किया गया है ।[1] यहाँ राजकुमार अपने समवयस्कों के साथ बैठकर उचित समय में मनोविनोद किया करते थे ।[2] समय में राजा अपने प्रधान अमात्य, सामंत तथा प्रधान जनपदों के साथ बैठकर विभिन्न प्रकार की समस्याओं का समाधान करता था ।[3] समस्याओं के समाधान के पश्चात् सभा का विसर्जन किया जाता था । यशस्तिलक में भी आस्थान मंडप का उल्लेख किया गया है जिसमें राजा बैठकर राज्य कार्य देखते थे ।[4] यशस्तिलक में आस्थान मंडप की साज-सज्जा अथवा शोभा का विस्तृत वर्णन किया गया है ।[5]

हर्षचरित में उल्लिखित है कि राज्यवर्धन की मृत्यु के पश्चात् हर्ष वर्धन ने बाहरी आस्थान मंडप में सेनापति सिंहनाद तथा गजाधिपति स्कन्दगुप्त से परामर्श किया था ।[6] कादम्बरी में भी चन्द्रापीड की दिग्विजय का निश्चय आस्थान मंडप में ही किया गया था ।[7] आदिपुराण में आस्थानिका का उल्लेख किया गया है जहाँ राजा रानियों सहित बैठकर संगीत, नृत्य, अभिनय आदि का आस्वादन करता था । सामन्त तथा श्रेष्ठि वर्ग के व्यक्ति भी दर्शन के लिए उपस्थित रहते थे ।[8]

हर्षचरित में दो आस्थान मंडपों का उल्लेख है, पहला बाह्य आस्थान मंडप तथा दूसरा राजकुल के भीतर धवलगृह के पास था जिसे भुक्ता आस्थान मंडप कहा जाता था । वासुदेवशरण अग्रवाल ने आस्थान मंडप की तुलना मुगल कालीन राजमहल से की है । बाह्य आस्थान मंडप को दरबारे आम और भुक्ता आस्थान मंडप को दरबारे खास कहा है ।[9] बाह्य आस्थान मंडप में राजा-महाराजा सभा का कार्य देखते तथा मंत्री, सेनापति आदि से विचार-

१. सम० क० १, ८५; ४, २९१-२९५-९६-३०१-३०८; ५, ४८१-४८२; ८, ७८९-७५२ ।
२. वही ८, ७८९ ।
३. वही ४ पृ० ३८१; ७, पृ० ६२९; ९, पृ० ९७३ ।
४. यशस्तिलक पृ० ३७३ (सर्वेषामाश्रमिणामितरव्यवहारविश्रामिणां च कार्याणिपश्यम् ।
५. वही पृ० ३६७ से ३७३ तक ।
६. वासुदेव शरण अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, परिशिष्ट १, पृ० २०९ ।
७. कादम्बरी पृ० ११८ ।
८. आदि० ४६।२०९ ।
९. अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, परिशिष्ट १, पृ० २०९ ।

विमर्श करते थे तथा भुक्तास्थान मंडप में भोजन के पश्चात् सम्राट अपने अंतरंग मित्रों और परिवार के साथ बैठकर विचार-विमर्श तथा मनोविनोद आदि भी किया करते थे। किन्तु समराइच्च कहा में एक ही प्रकार के आस्थानिका मंडप का उल्लेख है जिसे सभा मंडप अथवा मुगल काल का दरबारे आम कहा जा सकता है।

अन्तःपुर

राजाओं के यहां रानियों के निवास स्थान को अन्तःपुर कहा जाता था।[1] अन्तःपुर राजप्रासाद का एक विशाल एवं रमणीक भाग होता था। राजाओं का भी शयन कक्ष अन्तःपुर में ही होता था। अन्तःपुर में एक प्रधान महिषी अथवा महादेवी[2] तथा अन्य रानियां होती थीं। समराइच्च कहा में अंतःपुर की बनावट एवं साज-सज्जा का उल्लेख है। वहां चन्द्रमा की श्वेत चांदनी सी मणि और रत्नों के मङ्गल दीप से युक्त शयन कक्ष, फर्श पर बिखरे हुए सुगंधित पुष्प, निर्मल मणियों की कांति पर किया हुआ कस्तूरी का लेप, उज्ज्वल और विचित्र वस्त्रों के बनाए हुए वितान, श्रेष्ठ मृगाओं के लाल वर्ण के गद्दों से बिछे हुए पलंग, श्रेष्ठ स्वर्ण से बनाये गये मनोहर पात्र, लटकती हुयी सुन्दर और सुगंधित मालाएं, स्वर्ण-घटों से निकलता हुआ सुगंधित धूप का धुआं, चपल हंस और पारावत पक्षियों की सुन्दर क्रीड़ा, कर्पूर मिश्रित ताम्बूल की प्रसरित सुगंध, खिड़कियों पर रखी हुई सुगंधित विलेपन सामग्री तथा सुगंधित वारुणी से भरे हुए सुन्दर स्वर्ण के प्याले अपनी अनुपम शोभा बिखेरते रहते थे।[3]

अन्तःपुर के भवनों की दीवालें मणि जटित होने के कारण उस पर लोगों के प्रतिबिम्ब झलकते रहते थे। उत्तुङ्ग तोरण, स्तम्भों पर झलकती हुई शालभंजिकाएं, सुन्दर गवाक्ष तथा वेदिकाएं बनी होती थीं।[4] एक अन्य स्थान पर अंतःपुर के शयन कक्ष की अलंकारिता का वर्णन किया गया है।[5]

---

१. सम० क० १, ९, ४०; ४, ३०९, ३२१, ३३६, ३३८; ५, ३६४; ६, ५३१; ७, ६०१; ८, ७५६;—देखिए उत्तराध्ययन टीका, १८, पृ० २३२, अ; अर्थशास्त्र १, २०; रामायण २।१०।१२।

२. वही १, पृ० ९; ८, पृ० ७५६।

३. वही ४, २९१-९२।

४. वही ६, पृ० ५४८-४९।

५. वही ९, पृ० ९०१; तुलना के लिए देखिए—वासुदेवशरण अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३६७-६८-६९।

अन्तःपुर में निवास करने वाली रानियों के मनोरंजनार्थ अलग से नाट्यशालाओं तथा चित्रशालाओं का निर्माण किया जाता था जहाँ स्त्रियों द्वारा वाद्य, नृत्य, संगीत आदि का आयोजन किया जाता था।[1] बन्धन मोक्खजातक में अन्तःपुर की सोलह सौ नर्तकियों का उल्लेख है।[2] कादम्बरी में अन्तःपुर का उल्लेख है[3] जो राज प्रासाद का आभ्यन्तर कक्ष होता था। वहाँ रानियों की परिचर्या के लिए दास-दासियाँ होती थीं।[4] औपपातिक सूत्र में दौवारिक[5] (द्वारपाल) का उल्लेख आया है जो अन्तःपुर के द्वार पर बैठकर उसकी रखवाली करता था।

अतः स्पष्ट होता है कि राजाओं का अन्तःपुर सुव्यवस्थित एवं सुन्दरतम होता था।

राजपरिचर-प्रतिहारी

राजमहलों में सेवा कार्य के लिए राज परिचर नियुक्त रहते थे। इन राज परिचरों में प्रतिहारी भी एक होता था।[6] संभवतः यह पहरा देने वाला कर्मचारी होता था।[7] यह राजा के आस्थानिका मंडप में भी प्रवेश करता था।[8] प्रहरी के साथ साथ यह सूचना देने का भी कार्य करता था तथा पुत्र जन्मोत्सव आदि पर इसे पारितोषिक प्रदान किया जाता था।[9] समराइच्च कहा में महाप्रतिहारी[10] का भी उल्लेख है जो राजप्रासाद तथा तन्तःपुर में परिचर्या का कार्य करता था।

हर्षचरित के उल्लेख से भी पता चलता है कि प्रतिहारी राजसी ठाट-बाट

---

१. सम० क० ४, पृ० ३०९।
२. बन्धनमोक्ख जातक १२०, पृ० ४०।
३. कादम्बरी पृ० ५९।
४. वही पृ० ९०, ९२, १०१।
५. औपपातिक सूत्र ९, पृ० २५।
६. सम० क० १, २२-३१-३२; २, १५१; ४, २६६-६७, ३४४; ५, ४७२, ४८१-८२; ६, ५६५; ७, ६३१, ६७०, ६९१, ६९५, ७०९; ८, ७३९-४०, ७५३-५४-५५; ९, ८६०, ८८१, ८९२, ९३, ९११; देखिए—भगवती सूत्र ११, ११, ४३० में 'बाह्य प्रतिहारी।'
७. वही ७, ६७० (पडिहारीओ पडिहारेणं)।
८. वही ५, ४८१-८२।
९. वही ७, ७०९।
१०. वही ४, २६८; ७, ६०७।

और दरबारी प्रबन्ध की रीढ़ थे । प्रतिहारों के ऊपर महाप्रतिहारी और उन महाप्रतिहारी के मुखियाको दौवारिक कहा जाता था ।[1] प्रतिहार प्राचीन काल में सामन्त, महासामंत, मांडलिक, राजा, महाराजा, महाराजाधिराज, चक्रवर्ती, सम्राट आदि विभिन्न कोटि के राजाओं के भिन्न-भिन्न प्रकार के मकुट और पट्ट पहचान कर यथायोग्य सम्मान देते थे ।[2] राजाओं के सन्मुख दूतों और मिलने वालों को पेश करने का काम प्रतिहारी या महाप्रतिहारी का था ।[3] नासिक अभिलेख में प्रतिहार शब्द का उल्लेख है ।[4] यथा शीलादित्य के जैसोर अभिलेख[5] (वल्लभी संवत ३५७) तथा कर्णदेव के बनारस अभिलेख[6] (ई० सन् १०४२) मे भी महाप्रतिहारी का उल्लेख है । मजूमदार के अनुसार प्रतिहार और महाप्रतिहार प्रांतीय अधिकारी होने के साथ-साथ राजप्रासाद के कार्यों के भी अध्यक्ष होते थे ।[7] किन्तु दशरथ शर्मा ने प्रतिहार का शाब्दिक अर्थ द्वारपाल से लगाया है जिसका काम राजा से मिलने वाले लोगों को राजा के सामने प्रस्तुत करना था ।[8]

चारक

समराइच्च कहा में अन्य कर्मचारियों की भांति चारक[9] का भी उल्लेख किया गया है । ये चर गुप्तचर थे जो चोर डाकुओं तथा राज्य के अन्दर अन्य सभी प्रकार के रहस्यों का पता लगा कर उसकी सूचना राजा को देते थे । चार कर्म कूटनीति का मुख्य अंग था । कौटिल्य ने गुप्तचरों को राजा की आंख माना है । शत्रु सेना की मुख्य बातों का पता लगाने के लिए भी गुप्तचर काम में लिए जाते थे ।[10] ये लोग शत्रु सेना मे भर्ती होकर उनकी सब बातों का पता लगाते रहते थे । कूलवाल्य ऋषि की सहायता से राजा कूणिक वैशाली के

१ वासुदेवशरण अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ४४ ।
२ मानसार अ० ४९., १२-२६ ।
३ अल्तेकर—प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ० १४४ ।
४. इपि० इंडि० ८, पृ० ७३ ।
५. वही २२, पृ० ११७ ।
६. वही २. पृ० ३०९. ।
७. मजूमदार—चालुक्याज आफ गुजरात, पृ० २२९. ।
८. दशरथ शर्मा—अर्ली चौहान डायनेस्टीज, पृ० २०० ।
९. स० क० ४, पृ० २७१-७२ सो चेव में राया सव्वमेयं कारवेइति कुविओ एसो । नेयाविओ इमे चारये ।
१०. अर्थशास्त्र १, ११ ।

स्तूप को नष्ट कराकर राजा चेटक को पराजित करने में सफल हुआ था।[१] ये गुप्तचर कुछ चल विद्यार्थियों के रूप में, कुछ व्यापारियों के वेष में तथा कुछ तपस्वियों के वेश में रहकर अपना अपना कार्य गुप्त रूप में करते थे।[२] एक गुप्तचर को दूसरे गुप्तचर प्रायः मालूम नहीं रहते थे। जब एक गुप्तचर की रिपोर्ट दूसरे गुप्तचर की रिपोर्ट से पुष्ट हो जाती थी तो सरकार द्वारा कार्रवाई की जाती थी।[३] कर्णाटक के कलचुरि शासन में पाँच अधिकारी नियुक्त रहते थे जो न्याय, राजद्रोहियों और उपद्रवियों का पता लगाते थे। इन्हें पाँच ज्ञानेन्द्रिय कहा गया है।[४] यशस्तिलक में गुप्तचरों को राजा का दूसरा नेत्र कहा गया है।[५]

सैन्य व्यवस्था

आंतरिक विद्रोह की शांति तथा बाह्य आक्रमण से राज्य की सुरक्षा के लिए सेना की उचित व्यवस्था थी। अर्थशास्त्र में सैन्य बल को दण्ड कहा गया है।[६] राजा-महाराजाओं के पास चतुरंगिणी सेना की उचित व्यवस्था थी।[७] चतुरंगिणी सेना के अंतर्गत रथ-हस्ति-गज और पदाति सैनिक होते थे। सेना का सर्वोच्च अधिकारी राजा स्वयं होता था और उसके नीचे सेनापति,[८] महानायक[९] और महायुद्धपति[१०] नामक सैनिक अधिकारी होते थे। बाण ने बलाधिकृत[११] (वाहिनी पति—जिसमें ८१ हाथी, ८१ रथ, २४३ घोड़े तथा ४०५ पैदल होते थे जो आधुनिक बटालियन जैसी सेना होती थी), महाबलाधि-

१ आवश्यक चूर्णी २, पृ० १७४; देखिए—उत्तराध्ययन टीका २, पृ० ४७; अर्थशास्त्र २. ३५. ५०-५५।
२. अल्तेकर—प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ० १८१।
३. वही पृ० १८२।
४. इपिग्रैफिया कर्णाटिका, भाग ७, शिकारपुर संवत् १०२ और १२३।
५. यशस्तिलक ३।१७३।
६. अर्थशास्त्र ६. १।
७. सम० क० १, पृ० २७, ३, पृ० १९८, २२७; देखिए—पतंजलि महाभाष्य १-१-७२, पृ० ४४७।
८. वही ७ पृ० ६९८।
९. वही ८, पृ० ८३८।
१०. वही ९, पृ० ८९८-९९।
११. अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १८३; अग्रवाल-कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३१६, ३०५।